गांधी विचार दोहन

—गांधीजीकी संमति सहित—

लेखक

श्री० किशोरलाल मशरूवाला

अनुवादक

श्री 'आनंदवर्धन'

सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली

जिसकी प्रेम और चिंतायुक्त शुश्रूषा विना
यह पुस्तक लिखना और पूरी करना कठिन
हो जाता, उस प्रिय सहधर्मचारिणी
—सौभाग्यवती गोमतीको—

संमति

इस 'विचार-दोहन'को मैंने पढ़ लिया है। भाई किशोरलालको मेरे विचारोंका परिचय असाधारण है। जैसा परिचय है वैसी ही उनकी ग्रहणशक्ति भी है। इसलिए मुझे इसमें थोड़ी जगह ही फेर-फार करना पड़ा है। हम दोनोंमें बहुतेरे विषयोंमें विचारोंका ऐक्य होनेसे, हालांकि इसमें भाषा भाई किशोरलालकी है, फिर भी प्रत्येक प्रकरणके लिए अपनी समति देनेमें मुझे कठिनाई नहीं हुई। बहुत-से विषयोंका समावेश थोड़ेमें भाई किशोरलाल कर सके हैं, यह इस दोहनकी विशेषता है।

बोरसद
२५–५–३५

मो० क० गांधी

विषय-सूची

खंड ५ : स्वराज्य

खंड ६ : वाणिज्य

खंड ७ : उद्योग

खंड ८ : गोपालन

खंड ९ : खादी

खंड १० : स्वच्छता और आरोग्य

खंड ११ : शिक्षा

खंड १२ : साहित्य और कला

खंड १३ : लोकसेवक

खंड १४ : संस्थाएं

गांधी-विचार-दोहन

खंड १ :: धर्म

१

परमेश्वर

१. परमेश्वरका साक्षात्कार जीवनका एक मात्र योग्य ध्येय है। जीवनके दूसरे सब कार्य यह ध्येय सिद्ध करनेको ही होने चाहिएं।

२. जो प्रवृत्तियां इस ध्येयकी विरोधी मालूम हों, स्थूल दृष्टिसे उनका फल कितना ही ललचानेवाला और लाभदायक जान पड़नेपर भी उन प्रवृत्तियोंको त्याज्य समझना चाहिए।

३. इस ध्येयकी साधनभूत जान पड़नेवाली प्रवृत्ति कितनी ही कठिन, जोखिमभरी और स्थूल दृष्टिसे हानिकर प्रतीत होनेपर भी अवश्य कर्तव्य है।

४. इस परमेश्वरका स्वरूप मन और वाणीसे परे है। इसके संबंध-में हम इतना ही कह सकते हैं कि यह परमेश्वर अनंत, अनादि, सदा एकरूप रहनेवाला, विश्वका आत्मारूप अथवा आधाररूप और विश्वका कारण है। वह चैतन्य अथवा ज्ञानस्वरूप है। इसीका एक सनातन अस्तित्व है। शेष सब नाशवान है। अतः उसे एक छोटेसे शब्दसे समझने-के लिए हम इसे 'सत्य' कह सकते हैं।

५. इस भांति परमेश्वर ही सत्य है, और सत्य यानी परमेश्वर।

६. यह ज्ञान सत्यरूपी परमेश्वरकी निर्गुण भावना है।

७. जो कुछ मुझे आज ऐसा धर्म्य, न्याय्य और योग्य प्रतीत होता है कि जिसे करते, स्वीकारते या प्रकट करते मुझे संकोच होनेवाला नहीं है, जिसे मुझे करना ही चाहिए, और जिसे न करनेपर मेरे लिए मानसहित जीना ही असंभव हो, वह मेरे लिए सत्य है। वही मेरे लिए परमेश्वरका सगुण स्वरूप है।

८. सत्यकी अविश्रांत खोज किये जाना, तथा जैसा और जितना सत्य समझ पड़ा हो उसको लगनसे अमलमें लानेका नाम ही सत्याग्रह है, और यह परमेश्वरके साक्षात्कारका साधन-मार्ग है।

९. सत्य अनंत और विश्व अपार होनेके कारण इस खोजका कभी अंत नहीं आता। यों देखनेपर परमेश्वरका संपूर्ण साक्षात्कार संभव नहीं लगता। साधकको इस असमंजसमें नहीं पड़ना चाहिए, और न उस अपारको चाहे जहां मथने बैठना चाहिए। बल्कि उसे अपने जीवनमें जो बड़ी या छोटी, महत्त्वपूर्ण या तुच्छ-सी दिखाई देनेवाली प्रवृत्तियां अथवा क्रियायें करनी पड़ती हैं, उन्हींमें वह सत्यको शोधे और उसके प्रयोग करे। तो **'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'** न्यायसे उसे सत्य मिल रहेगा।

१०. अपने आसपास प्रवर्तित असत्य, अन्याय या अधर्मके प्रति उदासीन भावना रखनेवाला व्यक्ति सत्यका साक्षात्कार नहीं कर सकता। सत्यके शोधकको तो इस असत्य, अन्याय और अधर्मके उच्छेदके लिए तीव्र पुरुषार्थ करना है। और जबतक इनका सत्यादि साधनोंसे उच्छेद करनेमें वह सफल नहीं होता तबतक अपनी सत्यकी साधनाको अपूर्ण ही समझता है। अतः असत्य, अन्याय और अधर्मका प्रतिकार भी सत्याग्रहका आवश्यक अंग है।

११. सभी धर्म कहते हैं, इतिहास भी साक्षी देता है और अनुभवकी भी बात है कि असत्य, हिंसा आदिसे युक्त साधनोंद्वारा इस सत्यकी खोज करना असंभव है। उसी प्रकार संयम, व्रत, उपासना आदिसे चित्तको शुद्ध करनेका प्रयत्न किये बिना भी इसका ज्ञान नहीं होता। अतः आगे बतलाये जानेवाले व्रतादि ईश्वर-साक्षात्कारके अनिवार्य साधन माने गये हैं।

२

सत्य

१. सत्य अर्थात् परमेश्वर—यह सत्यका पर अथवा उच्च अर्थ है। इसके अपर अथवा साधारण अर्थमें सत्यके मानी हैं सत्य आग्रह, सत्य विचार, सत्य वाणी और सत्य कर्म।

२. जो सत्य है वही दूरदर्शी दृष्टिसे हितकर अथवा श्रेष्ठ है। इसलिए सत्य अथवा सत्‌का अर्थ श्रेष्ठ भी होता है; और सत्य आग्रह, सत्य विचार, सत्य वाणी और सत्य कर्म जो वस्तु है वही सदाग्रह, सद्विचार, सद्वाणी और सत्कर्म है।

३. जिन सत्य और सनातन नियमोंद्वारा विश्वका जड़-चेतन कार-बार चलता है, उनकी अविश्रांत खोज करते रहना तथा उनके अनुसार अपना जीवन गढ़ते रहना और असत्यका सत्यादि साधनोंद्वारा प्रतिकार करना सत्याग्रह है।

४. जो विचार हमारी राग-द्वेष-विहीन, निष्पक्ष तथा श्रद्धा और भक्तियुक्त बुद्धिको सदाके लिए, या जिन परिस्थितियोंतक हमारी दृष्टि पहुंच सकती है उनमें यथाशक्य अधिक समयतकके लिए, उचित और न्याय्य प्रतीत हो, वह हमारे लिए सत्य विचार है।

५. जो वाणी तथ्यको अपनी जानकारीके अनुसार कर्त्तव्य आ पड़ने-पर ठीक-ठीक सामने रखती है और उसमें कुछ कमी-बेशी करनेका यत्न नहीं करती, कि जिससे अन्यथा अभिप्राय भासित हो, वह सत्य वाणी है।

६. विचारसे जो सत्य प्रतीत हो उसीके सविवेक आचरणका नाम सत्य कर्म है।

७. पर सत्य जो परमेश्वर है उसे जाननेको अपर सत्य साधन है यह कहिए अथवा सत्य आग्रह, सत्य विचार, सत्य वाणी और सत्य कर्मकी—यानी अपर सत्यके पालनकी—पूर्ण सिद्धिका ही नाम परमेश्वरका साक्षा-त्कार है यह कह लीजिए। साधकके लिए दोनोंमें भेद नहीं है।

३

अहिंसा

१. साधारणतः लोग सत्य अर्थात् 'सत्यवादिता', इतना ही स्थूल अर्थ लेते हैं। परंतु सत्य-वाणीमें सत्यके पालनका पूरा समावेश नहीं होता। ऐसे ही साधारणतः लोग दूसरे जीवको न मारना, इतना ही अहिंसाका स्थूल

अर्थ करते हैं; परंतु केवल प्राण न लेने मात्रसे ही अहिंसाकी साधना पूरी नहीं होती।

२. अहिंसा केवल आचरणका स्थूल नियम नहीं है, बल्कि यह मनकी वृत्ति है। जिस वृत्तिमें कहीं भी द्वेषकी गंधतक नहीं रहती उसका नाम अहिंसा है।

३. ऐसी अहिंसा सत्यके समान ही व्यापक है। ऐसी अहिंसाकी सिद्धि हुए बिना सत्यकी सिद्धि होना अशक्य है। इसलिए सत्यको दूसरी दृष्टि-से देखा जाय तो वह अहिंसाकी पराकाष्ठा ही है। पूर्ण सत्य और पूर्ण अहिंसामें भेद नहीं है; फिर भी, समझनेकी सुविधाके लिए, सत्यको साध्य और अहिंसाको साधन माना है।

४. ये——सत्य और अहिंसा——सिक्केकी दो पीठोंकी भांति एक ही सनातन वस्तुकी दो पीठोंके समान हैं।

५. अनेक धर्मोंमें जो 'ईश्वर प्रेमस्वरूप है' कहा गया है, वह प्रेम और यह अहिंसा भिन्न नहीं हैं।

६. प्रेमका शुद्ध व्यापक स्वरूप अहिंसा है। पर जिस प्रेममें राग या मोहकी गंध आती है वह अहिंसा नहीं होगा। जहां राग-मोह होता है वहां द्वेषका बीज भी होगा ही। प्रेममें बहुत बार राग-द्वेष पाये जाते हैं। इसलिए तत्त्वज्ञोंने प्रेम शब्दका प्रयोग न कर, अहिंसा शब्द लिया, और इसे परमधर्म बतलाया।

७. दूसरेके शरीर या मनको दुःख या चोट न पहुंचाना, इतना ही अहिंसा-धर्म नहीं है; हां, साधारणतः इसे अहिंसा-धर्मका बाहरी लक्षण कह सकते है। दूसरोंके शरीर या मनको स्थूल दृष्टिसे दुःख या चोट पहुंचती जान पड़नेपर भी, संभव है कि उसमें शुद्ध अहिंसा-धर्मका पालन होता हो। दूसरी ओर, यह भी संभव है कि इस प्रकार दुःख या चोट पहुंचानेका आक्षेप किये जाने योग्य कुछ न करनेपर भी इस व्यक्तिने हिंसा की हो। अहिंसाका भाव दिखाई देनेवाले परिणाममें ही नहीं है, बल्कि अंतःकरणकी राग-द्वेष-विहीन स्थितिमें है।

८. तथापि दृष्ट लक्षणोंकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। क्योंकि इनके स्थूल साधन होनेपर भी अपने या दूसरेके हृदयमें अहिंसावृत्ति कितनी विकसित हुई है उसका इन लक्षणोंसे साधारणतः अंदाज मिल जाता है। दूसरे प्राणीको उद्वेग न हो ऐसी वाणी और कर्मको देखकर ही साधारण जीवनमें तो इस बातकी प्रत्यक्ष परख हो सकती है कि उस व्यक्तिमें अहिंसा कहांतक पल्लवित हुई है। अहिंसामय दुःख देनेके मौके आते हैं, तथापि उस समय उनमें विद्यमान अहिंसा स्पष्ट सामने रहती है। जहां स्वार्थकी लेशमात्र भी गंध है वहां पूर्ण अहिंसा संभव नहीं है।

९. पर इतनेसे अहिंसाकी साधना पूरी हुई नहीं समझी जा सकती। अहिंसाका साधक केवल प्राणियोंको उद्वेग पहुंचानेवाली वाणी और कर्म न बोल न करके अथवा मनमें भी उनके प्रति द्वेषभाव न आने देकर संतोष नहीं मानता; बल्कि जगतमें फैले हुए दुःखोंको देखने और उनके उपायोंका ध्यान धरनेका प्रयत्न करता रहेगा, और दूसरोंके सुखके लिए स्वयं प्रसन्नतासे कष्ट सहेगा। मतलब यह कि अहिंसा केवल एक निवृत्ति-रूप कर्म या निष्क्रिया नहीं है, बल्कि बलवान प्रवृत्ति या प्रक्रिया है।

१०. अहिंसामें तीव्र कार्यसाधक शक्ति भरी हुई है। इसमें जो अमोघ शक्ति है उसका अभी पूर्ण संशोधन नहीं हुआ है। 'अहिंसाके समीप सारे वैरभाव शांत हो जाते हैं', यह सूत्र शास्त्रोंका प्रलाप नहीं है, बल्कि ऋषिका अनुभव-वाक्य है। जाने-अनजाने, प्रकृतिकी प्रेरणासे, सब प्राणियोंने एक-दूसरेके लिए कष्ट उठानेका धर्म पहचाना है, और उसके आचरणद्वारा संसारको निबाहा है। तथापि इस शक्तिका संपूर्ण विकास और सब कार्यों और प्रसंगोंमें इसके प्रयोगके मार्गका भी ज्ञानपूर्वक संशोधन और संगठन नहीं हुआ है। हिंसाके मार्गोंके संशोधन और संगटन करनेका मनुष्यने जितना दीर्घ उद्योग किया है, और उसका बहुत अंशोंमें शास्त्र बना डालनेमें सफलता पाई है, उतना यदि वह अहिंसाकी शक्तिके संशोधन और संगठनके लिए करे तो मनुष्यजातिके दुःखोंके निवारणार्थ यह एक अनमोल, सर्वदा अव्यर्थ और परिणाममें उभयपक्षका कल्याण करनेवाला साधन सिद्ध होगा।

११. जिस श्रद्धा और उद्योगसे वैज्ञानिक प्रकृतिकी शक्तियोंकी शोध करते हैं और उसके नियमोंको विविध प्रकारसे व्यवहारमें लानेका प्रयत्न करते हैं, वैसी ही श्रद्धा और उद्योगसे अहिंसाकी शक्तिकी खोज करनेकी और उनके नियमोंको व्यवहारमें लानेका प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है।

४

ब्रह्मचर्य

१. जैसे अहिंसा बिना सत्यकी सिद्धि संभव नहीं है, वैसे ब्रह्मचर्य बिना सत्य और उसी तरह अहिंसा दोनोंकी सिद्धि अशक्य है।

२. ब्रह्मचर्यसे मतलब है ब्रह्म अथवा परमेश्वरके मार्गपर चलना; अर्थात् मन और इंद्रियोंको परमेश्वरके मार्गपर रखना।

३. रागादिक विकारोंके बिना अब्रह्मचर्य अर्थात् इंद्रियपरायणता नहीं हो सकती, और विकारी मनुष्य सत्य या अहिंसाका पूर्ण पालन कर नहीं सकता; यह कि आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकता।

४. अतः ब्रह्मचर्यका अर्थ केवल वीर्यरक्षा अथवा कामजय मात्र ही नहीं है, बल्कि इसमें सभी इंद्रियोंका संयम आवश्यक है।

५. पर जैसे सत्यका स्थूल अर्थ सत्य वाणी और अहिंसाका स्थूल अर्थ प्राण न लेना होगया है, वैसे ब्रह्मचर्यका भी सिर्फ 'कामजय' इतना ही अर्थ लिया जाता है। कारण इसका यह है कि मनुष्यको कामजय ही अधिक-से-अधिक कठिन इंद्रियजय लगता है।

६. वास्तवमें जीवनके सुखपूर्वक निर्वाहके लिए अन्य इंद्रियोंका थोड़ा-सा भी भोग आवश्यक होता है। पर, ब्रह्मचर्यसे जीवन-निर्वाह अशक्य नहीं होता, उलटा अधिक अच्छी तरहसे और तेजस्वी होता है।

७. आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारीको जीवनकी पूर्णता तथा परमानंद प्राप्त करनेकी जितनी आशा और अनुकूलता है, उतनी अब्रह्मचारीको नहीं है। ऐसे स्त्री-पुरुषोंका जीवन अविवाहित और विवाहित दोनोंके लिए दीपस्तंभके समान है।

८. किंतु दूसरे प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्य आहार-विहारमें अधिक स्वतंत्रता भोगता है और इससे वह समस्त इंद्रियोंके भोगोंमें अधिकता करता है। परिणामस्वरूप केवल सालके किन्हीं खास दिनोंमें ही उसे काम-वेग नहीं आता, बल्कि वह बराबर उसका पोषण करता रहता है। यों कामविकार इसका निरंतरका रोग बने रहनेके कारण उसे जीतना इसके लिए कठिन-से-कठिन हो गया है।

९. परंतु विचारशील मनुष्य देख सकता है कि दूसरी इंद्रियोंको पोषे बिना कामको बहुत पोषण नहीं मिलता, और दूसरी इंद्रियोंको जीते बिना कामजयकी आशा रखना व्यर्थ है।

१०. इस प्रकार प्रयत्न करनेवाले स्त्री-पुरुषोंके लिए ब्रह्मचर्यका पालन साधारणतः जितना समझा जाता है उतना कठिन नहीं है।

५

अस्वाद

इस प्रकार एक व्रत दूसरे व्रतको न्यौता देता है।

१. एक भी इंद्रियके स्वच्छंदी बन जानेसे दूसरी इंद्रियोंपर प्राप्त नियंत्रण ढीला पड़ जाता है। उनमें भी, ब्रह्मचर्यकी दृष्टिसे, जीतनेमें सबसे कठिन और महत्त्वकी स्वादेंद्रिय है। इसपर स्पष्टरूपसे ध्यान रखानेके खयालसे स्वादजयको व्रतोंमें खास स्थान दिया गया है।

२. शरीरमेंसे खर्च हो जानेवाले तत्त्वोंको फिर पूरा करने और इस प्रकार शरीरको कार्यक्षम स्थितिमें रखनेके लिए आहारकी जरूरत है। इसलिए यह दृष्टि रखकर ही जितने और जिस प्रकारके आहारकी जरूरत हो वही खाना चाहिए। स्वादके लिए—अर्थात् जीभको रुचनेकी दृष्टिसे कुछ खाना या खुराकमें मिलाना, अथवा अधिक आहार करना अस्वाद-व्रतका भंग है।

३. अस्वाद-वृत्तिसे चलनेवाले संयुक्त भोजनालयमें जाकर वहां जो भोजन बना हो उसमेंसे जो हमारे लिए त्याज्य न हो उस आहार-

को ईश्वरका अनुग्रह मानकर, मनमें भी उसकी टीका किये बिना, संतोष-पूर्वक और शरीरके लिए जितना आवश्यक हो उतना खा लेना, अस्वाद-व्रतमें बहुत सहायक है।

६

अस्तेय

१. अस्तेयका अर्थ दूसरेके स्वामित्ववाली वस्तुका न लेनाभर ही नहीं है। अपनी मानी जाती हो, पर अपनेको उसकी जरूरत न हो, तथापि उसका उपयोग करना भी चोरी ही है। दूसरोंकी चीजपर नजर बिगाड़ना मानसिक चोरी है। दूसरोंके विचार अथवा शोध—आविष्कार—को जानकर अपनी बनाकर पेश करना, विचारकी चोरी है।

२. हम जगतकी समस्त वस्तुओंपर परमेश्वरका स्वामित्व समझें और प्राणीमात्रको उसके कर्ता-हर्तापनमें रहनेवाले एक विशाल कुटुंबके रूपमें समझें,तो जगतमेंसे बिल्कुल आवश्यक वस्तुओंभरके उपभोग करनेका अधिकार हमें रहता है। इसपर इससे अधिक अधिकार मानना चोरी है।

७

अपरिग्रह

१. अस्तेय और अपरिग्रहमें बहुत थोड़ा भेद है। जिसकी हमें आज आवश्यकता नहीं है, उसे भविष्यकी चिंतासे संग्रहकर रखना, परिग्रह है। परमेश्वरपर विश्वास रखनेवाला यह मानता है कि जिस वस्तुकी जब पूरी आवश्यकता होगी तब वह अवश्य प्राप्त हो जायगी। इसलिए वह किसी संग्रह करनेके फेरमें नहीं पड़ता।

२. इसका अर्थ यह नहीं है कि जो शक्तिमान होते हुए भी मेहनत नहीं करता, उसकी भी आवश्यकताएं परमेश्वर पूरी करता है। जिसकी मेहनत करनेकी नीयत नहीं है, जो मेहनतको आफत समझता

है, उसे तो यह विश्वास ही नहीं जमता कि परमेश्वर पूरा पाड़नेवाला है। वह तो अपनी परिग्रह-शक्तिपर ही भरोसा रखता है। उसके निर्वाहकी परमेश्वर चिंता करता है जो शक्ति होनेपर पूरा-पूरा श्रम करता है और श्रम करनेमें ही प्रतिष्ठा समझता है, पर अपरिग्रही रहता है।

३. फिर, इसका अर्थ यह नहीं है कि समाजमें रहकर इस व्रतका पालन करनेकी इच्छा करनेवाला मनुष्य अपने पास आई हुई वस्तुओंको रास्तेमें डाल आवे या बिगड़ने दे। वह अपनेको इन वस्तुओंका रक्षक समझे और उनकी ठीक हिफाजत रक्खे; लेकिन पलभरके लिए भी अपनेको इनका मालिक न माने। अतः जिन्हें उनके उपयोगकी आवश्यकता हो उन्हें इनका इस्तेमाल करने देनेमें रुकावट न डाले। अपने या अपने बाल-बच्चोंके काम आनेके खयालसे जो एक चिथड़ा ही बटोरकर रखता है और दूसरेको जरूरत होते हुए भी इस्तेमाल नहीं करने देता, वह परिग्रही है। जो ऐसी वृत्तिसे रहित है, लाख रुपयेकी पूंजी रखता हुआ भी, वह अपरिग्रही है।

८

शरीर-श्रम

१. जीवनके आवश्यक पदार्थ उत्पन्न करनेके लिए स्वयं शारीरिक परिश्रम करना, यह अस्तेय और अपरिग्रहमेंसे निकलनेवाला सीधा नियम है। परिश्रमके बिना जो पदार्थ नहीं उपजते, और जिनके बिना जीवन निभ नहीं सकता, उनके लिए शारीरिक श्रम किये बिना उनका उपभोग करें तो जगतके प्रति हम चोर ठहरते हैं।

२. पारमार्थिक भावसे ऐसा परिश्रम करनेका नाम यज्ञ है। अपने किय परिश्रमसे उत्पन्न पदार्थोंका स्वयं ही उपभोग करनेकी अभिलाषा रखना सकाम कर्म कहलावेगा। वैसी अभिलाषाके बिना, इतने पदार्थ जगतके लिए पैदा होने ही चाहिएं, यह समझकर परिश्रम करने-का नाम निष्काम कर्म है और वह यज्ञ है।

३. मल, कूड़ा-करकट आदि अनर्थकारी पदार्थोंके संबंधकी व्यवस्थाके लिए किया हुआ परिश्रम भी यज्ञका एक प्रकार ही कहा जाता है। ऐसा परिश्रम हरेकको अवश्य करना चाहिए।

४. इस दृष्टिसे जांचनेपर जान पड़ता है कि हम सब जो पढ़े-लिखे कहलाते हैं, वे अपने परिश्रमसे जितना पैदा कर सकते हैं उससे बहुत अधिक पदार्थोंका उपभोग करते हैं और बेकारका संग्रह कर रखते हैं। इसके सिवा अनर्थकारी वस्तुओंकी उचित व्यवस्थाके लिए तो हम शायद ही शारीरिक परिश्रम करते हैं। इससे अनेक प्राणियोंको तंगी और बेजा तकलीफ भुगतनी पड़ती है। मतलब हम अस्तेय और अपरिग्रह-व्रतका पल-पलपर भंग करते हैं।

५. अतः हमारे लिए अस्तेयादि व्रतोंकी ओर कदम उठानेमें जरूरी क़दम यह है, कि अपनी आवश्यकताओंको और निजी परिग्रहको जितना बने उतना घटाते जाना, और उत्पादक श्रमके लिए तथा अनर्थकारी पदार्थोंकी योग्य व्यवस्थाके लिए निष्कामभावसे और यज्ञबुद्धिसे नियम-पूर्वक अपने निजी श्रमके रूपमें हाथ बंटाना।

६. इसके लिए आजकी भारतवर्षकी स्थितिमें कताई तथा मलमूत्र साफ करके इसकी उचित व्यवस्था करना आश्रममें यज्ञकर्म माना गया है। इसका अधिक विचार आगे होगा।

६

स्वदेशी

१. शरीर-श्रमके सिद्धांतमेंसे ही स्वदेशी धर्मका उद्भव होता है।

२. अस्तेय और अपरिग्रहका आदर्श रखनेवाला मनुष्य दूसरेके परिश्रमका लाचार दशामें ही उपयोग करेगा।

अपना भोजन बनाने, कपड़े धोने, मलमूत्र साफ करने, बरतन मांजने, हजामत करने, झाड़ू देने इत्यादि निजी दैनिक कामोंके स्वयं न करनेमें अथवा दूसरोंसे करानेमें मान या प्रतिष्ठा है, यह समझकर

दूसरोंसे नही करावेगा पर अपनी अशक्तिके कारण या प्रेमके कारण या अपने साथियोंके साथ अंगीकृत कार्योंमें सुविधाकी दृष्टिसे उत्पन्न श्रम-विभागसे वह ऐसी सेवा ले सकेगा। इसमें अमुक काम बड़ा है, अमुक छोटा है, अमुक काम करनेवाला, केवल इस कामकी किस्मके कारण ही, आदरणीय है और दूसरा तुच्छ है, इस भावकी गंध भी नहीं होनी चाहिए।

३. ऊपरके सूत्रमें बताया गया सिद्धांत आदर्शरूप है। साथीपनकी इस भावनाका विस्तार करनेसे और जगतमें व्यवहारकी जो रीति प्रत्यक्षतः चल रही है उसका विचार करनेसे मालूम होता है कि हमारी कितनी ही आवश्यकताओंको प्राप्त करनेके लिए कुटुंब या साथियोंके साथ ही सहयोगमूलक श्रम-विभाग काफी नहीं होता, बल्कि पड़ोसी और ग्रामवासियोंके साथ भी सहयोग और श्रम-विभाग करना पडता है। इसमेंसे स्वदेशी-धर्मकी उत्पत्ति है।

४. स्वदेशी-व्रत केवल स्वदेशाभिमानके विचारमेंसे नही उपजा है, बल्कि धर्मके विचारमेंसे उपजा है। समग्र विश्वके साथ बंधुत्वकी भावनाके लिए प्रयत्न होते हुए भी, जिन पड़ोसियोंके बीचमें हमारा जीवन दिन-रात गुजरता है, और अनेक विषयोंमें जिनके साथ हमारे संबंध जुड़े हुए हे और जुड़ते रहते हैं, उन्हींके साथ हमारा पहला व्यवहार उचित है। ऐसे धर्मयुक्त व्यवहारकी अवगणना करके विश्व-बंधुत्वकी सिद्धि नहीं हो सकती। केवल दिखावाभर ही होता है।

५. केवल राष्ट्रीयताकी भावनासे उपजा हुआ स्वदेशीका विचार विदेशियोंके हितकी उपेक्षा कर सकता है और उनका अहित करनेकी ताकमें भी रह सकता है। धर्मरूप स्वदेशी स्वराष्ट्रका कल्याण साधते हुए भी परराष्ट्रका अकल्याण न चाहेगा न करनेकी चेष्टा करेगा।

१०

अभय

१. जो मनुष्य अपने मनके विकारोंके सिवाय अन्य आपत्तियोंका भय रखता है, वह अहिंसाका पालन नहीं कर सकता। इसलिए दैवी संपत्तियोंमें अभय प्रथम प्राप्त करने योग्य गुण है।

२. मनुष्य आम तौरपर बीसों बातोंसे डरता रहता है—जैसे, मौत, शारीरिक कष्ट, धननाश, मारकाट, जुल्म और अत्याचार, मानहानि, लोकनिंदा, काल्पनिक वहम, कौटुंबिक क्लेश, अथवा इस खयालसे कि कुटुंबियोंको दुःख होगा, इत्यादि। डरनेवाला मनुष्य धर्माधर्मका गहरा विचार करनेका साहस ही नहीं कर सकता। वह सत्यको खोज नहीं सकता और खोजकर उससे चिमटा नहीं रह सकता। इस दृष्टिसे उसके द्वारा सत्यका पालन नहीं हो सकता।

३. मनुष्यके डरनेकी एक ही वस्तु है—अपना विकारी चित्त। ईश्वर-का डर कहिये, अधर्मका डर कहिये, या अपने विकाररूपी शत्रुका डर कहिये, तीनों एक ही हैं। यदि विकार न हों तो अधर्म नहीं हो सकता; और अधर्म न हो तो 'ईश्वरका डर', यह शब्द-प्रयोग ही अयुक्त हो जाता है।

११

नम्रता

१. नम्रताका गुण अहिंसाका ही एक अंश कहा जा सकता है। जहां अहंकार है वहां नम्रताकी न्यूनता है; अहंकारी सर्वात्मभाव नहीं रख सकता, इसलिए उसकी अहिंसामें त्रुटि पड़ती है।

२. शून्यवत हो रहना नम्रताकी पराकाष्ठा है। मैं भी कुछ हूं, मुझमें कुछ विशेषता है—ऐसा शरीर, मन, बुद्धि, विद्या, कला, चतुराई, पवित्रता, ज्ञान, भक्ति, उदारता, व्रतपालन अथवा स्वयं विनयादि गुणोंके

विषयमें भी खयाल रहना और इससे अपना अस्तित्व, मानों कोई बोझ लादे चल रहे हों ऐसा भरकम लगना अहंकार है। ऐसा भान कम-से-कम होना—जैसा अपने शरीरके नीरोग अवयवोंके विषयमें होता है वैसा—शून्यवत् स्थिति अथवा नम्रता है।

३. ऐसी नम्रता अभ्याससे नहीं प्राप्त की जा सकती, बल्कि अनेक सद्गुणों और विचारमय जीवनके परिणाम-स्वरूप स्वभावमें अपने-आप प्रकट होती है। नम्र मनुष्यको अपनी नम्रताका भानतक नहीं होता।

४. बहुत बार बाहरी नम्रताकी ओटमें सूक्ष्म और तीव्र अभिमान छिपा हुआ होता है। यह नम्रता नहीं है।

५. अपनी मर्यादाओंको समझना और उन्हींके अंदर रहना यह भी नम्रताका आवश्यक लक्षण है।

६. नम्र मनुष्य दुनिया भरके काम कर डालनेकी हविस नहीं रखता, किंतु अपनी मर्यादा निश्चित करके उसके सिद्ध होने तक उसके बाहर कदम नहीं रखता।

७. सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंका साधक यह समझ ले कि इनके पालनकी अपनी शक्ति आदर्शके मुकाबलेमें कितनी अल्प है तो वह अपने-आप नम्र रहे।

८. एक ओर तो वह सत्य, अहिंसा आदिमें भरी हुई शक्तिके लिए अपनी श्रद्धा कम न होने दे और दूसरी ओरसे इनकी चरम सीमातक पहुंचने की अपनी अल्पशक्तिको देखकर हत श न हो, किंतु नम्रतापूर्वक अपनी मर्यादा समझकर इन सबको जीवनमें चरितार्थ करनेका सदैव यत्न करता रहे

९. आदर्शको पहुंचनेमें अपनी कमियोंके प्रति नम्र मनुष्य असावधान नहीं रहता। इन कमियोंको वह निष्कपट भावसे स्वीकार करता है, उनका समर्थन करनेके लोभमें नहीं फंसता।

१२
व्रत-प्रतिज्ञा

१. व्रतका अर्थ है—अपनेको जो आचरण सत्य विचारका अनुसरण करनेवाला लगता हो उससे अविचल भावसे चिमटे रहने और उसके विपरीत आचरण कभी न करनेकी प्रतिज्ञा।

२. इस अविचलतामें जितनी ढिलाई आवेगी, उतनी सत्यके दर्शनमें कचाई रह जायगी।

३. सदैव सत्यरूपी परमात्मामें ही स्थिति रहनेके लिए—अर्थात् मन-वचन-कर्मसे सत्यनिष्ठ ही रहनेकी अवस्थाको प्राप्त करनेके लिए—ऐसी प्रतिज्ञायें आवश्यक हैं।

४. असावधानीमें, कुसंगतिके कारण अथवा पूर्वकी कुटेवों या कुसंस्कारोंके कारण, मन अपने किये निश्चयोंपर नहीं टिक पाता इसके लिए, उसे व्रतरूपी बेड़ियोंसे कसना उसे स्थिर करनेका अच्छा उपाय है।

५. यह स्पष्ट है कि जो आग्रह, विचार, वाणी और कर्म सत्य हों उन्हींके लिए व्रत हो सकता है। असत्य आग्रह, असत्य विचार, असत्य वाणी अथवा असत्य कर्म करनेका व्रत नहीं लिया जा सकता और लिया हो तो वह छोड़ देना पड़ता है। व्रतमें ऊर्ध्वगमन है, परिश्रम है। वह असत्य या भोगादिमें नहीं होता। इससे भोग करनेका व्रत नहीं हो सकता।

६. असत्य न होनेपर लिया हुआ व्रत छोड़ा नहीं जा सकता। इसे पालनेमें आनेवाली कठिनाइयोंको जो आपड़ें उठाना ही चाहिए।

१३
उपासना-प्रार्थना*

१. उपासनाका अर्थ है परमेश्वरके पास बैठना। बड़ोंके पास बैठना, अर्थात् तद्रूप होना। परमेश्वर अर्थात् सत्य। इसलिए सत्यरूप होनेका

* यह प्रकरण गांधीजीने स्वयं लिखा है।—कि० घ० म०

नाम है उपासना। सत्यरूप होनेकी तीव्र इच्छा करना, भगवानसे विनती करना प्रार्थना है।

२. सत्यरूप होना अर्थात् निर्विकारी होना, निर्विकारी होनेके लिए विकारी-विचार भी उत्पन्न न होने देने चाहिएं। मन खाली नहीं रहता—या तो विकारी विचार करेगा अथवा सत्यकी ओर जायगा। रामकृष्णादि सत्यकी मूर्तिरूप हैं। इसलिए इन्हींका स्मरण नामस्मरण है। हृदयसे नाम-स्मरण करनेवाला तद्रूप अवश्य हो जायगा।

३. उपासना बुद्धिका विषय नहीं है, बल्कि श्रद्धाका विषय है। उपासना करते-करते शुद्ध होना निश्चित ही है। ऐसी श्रद्धा रखकर नित्य उपासना करनी ही चाहिए। जैसे शरीरको अन्नादि पोषते हैं वैसे आत्माको उपासना पोषती है।

४. सत्यरूप ईश्वर सबमें बसता है। अतः जीवमात्रसे ऐक्य साधने-की आवश्यकता है। अतः उपासना व्यक्तिगत और उसी प्रकार सामुदा-यिक होनी चाहिए।

५. जीवमात्रके साथ ऐक्य साधनेका अर्थ है उनकी सेवा करना। इससे निष्काम सेवा भी उपासना ही मानी जायगी।

१४

व्रतोंकी साधना

१. गायको बचानेके लिए असत्य बोला जा सकता है या नहीं, सांप-सरीखे प्राणियोंको मारा जा सकता है या नहीं, स्त्रीपर बलात्कार करनेवाले अत्याचारीको पशुबलसे रोका जाय या नहीं, ऐसी-ऐसी तार्किक उलझनोंमें पड़कर व्रतोंकी साधना नहीं हो सकती। ये गुत्थियां बुद्धि-के तरीकेसे सुलझनी होंगी तब सुलझ जायंगी, और यदि हमने जीवनके दैनिक और सामान्य अवसरोंपर व्रतोंकी साधना सुचारुरूपसे की होगी तो कठिन अवसरोंमें हमें स्वयं क्या करना है, इसका अंदाज अपने आप हो जायगा।

२. दैनिक और सामान्य प्रसंगोंके कुछ उदाहरण :—

(क) **असत्याचरणके** : किसीको बुरा समझते हुए अच्छा बतानेकी कोशिश करना, बड़ा या अच्छा कहलानेकी इच्छासे अपनेमें न होनेवाले गुणोंका स्वांग भरना, बोलनेमें अतिशयोक्ति करना, अपने दोषोंका जिनके सामने प्रकट करना आवश्यक है उनसे छिपाना, साथी या वरिष्ठके प्रश्नका उड़ता उत्तर देना, प्रकाशित करने योग्यको छिपाना, विश्वासका भंग करना, वादेका तोड़ना इत्यादि।

(ख) **हिंसाके** : किसीका अपमान करना, दुत्कारना, खराब चीज दूसरेको देना और अच्छी खुद लेना, अपने कामसे जी चुराकर साथीपर उसका बोझ डाल देना, पड़ोसी या साथीके दुःख या बीमारीमें समभावी होनेमें चूकना, अपने पास होते हुए भी भूखे-प्यासेको अन्न-पानी न देना, अतिथिका सत्कार न करना, मजदूरसे तुच्छतापूर्वक बोलना और उसपर बिना सोचे-विचारे काम लादे जाना, जानवरको कांटा, डंडा, गाली आदिद्वारा पीड़ा पहुंचाना, भोजनमें, भात कच्चा रह गया, दालमें नमक अधिक हो गया, साग रुचिकर नहीं है—ऐसी क्षुद्र बातोंपर चिढ़ना, कुढ़ना, इत्यादि-इत्यादि।

इसी प्रकार दूसरे व्रतोंके विषयमें भी समझना चाहिए।

३. ब्रह्मचर्यके पालनमें निम्नलिखित सूचनायें उपयोगी हो सकती हैं:—

(क) बालक-बालिकाओंका सादगी और नैसर्गिक तरीकेसे, वे जीवन भर निर्मल रहेंगे इस श्रद्धासे, पालना करना।

(ख) सबको मिर्च, मसाले उत्तेजक पदार्थ, वसावाली भारी खुराक, पचनेमें भारी मिष्टान्न, मिठाई और तले हुए पदार्थोंका खाना छोड़ देना चाहिए।

(ग) पति-पत्नीका अलग-अलग कमरेमें सोना और एकांत टालना।

(घ) शरीर और मन दोनोंको निरंतर और सत्कार्योंमें लगाये रखना।

(ङ) रातको जल्दी सोकर सुबह जल्दी उठनेका नियम सख्तीसे पालना।

(च) किसी भी प्रकारकी बीभत्स और टुच्ची चीजें न पढ़ना। मलिन विचारोंकी औषध निर्मल विचार हैं।

(छ) थियेटर, सिनेमा आदि मनोविकारोंको जाग्रत करनेवाले तमाशे न देखना।

(ज) स्वप्नदोष हो तो घबरा जाना नहीं चाहिए। तंदुरुस्त आदमीके लिए अच्छे-से-अच्छा इलाज है, उसी समय ठंडे पानीसे नहाना। कभी-कभी स्त्री-संग स्वप्नावस्थाका इलाज है, यह खयाल गलत है।

(झ) सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि किसी भी व्यक्तिको—पति-पत्नी तकमें—संयम दुर्घट है, अथवा शरीर और मनके लिए हानिकारक है, अथवा विषय-भोग आरोग्य-दृष्टिसे आवश्यक है, ऐसी सम्मतियोंपर तनिक भी विश्वास नहीं रखना चाहिए। उलटे, सबको चाहिए कि संयमको जीवन-की स्वाभाविक और साधारण स्थितिकी भांति मानकर चलें।

(ञ) नित्य उठकर पवित्रता और निर्मलताके लिए एकाग्र चित्तसे प्रभुकी प्रार्थना करनी, रामनाम या ऐसे किसी मंत्रका सहारा लेना—यह विषयको जीतनेका सुवर्ण नियम है[१]।

४. (क) प्रार्थनामें सोना, आलस्य करना, बात करना, ध्यान न देना, मनको यहां-वहां भटकने देना, आदिको प्रार्थनाका छूट जाना समझना चाहिए। यही स्थिति अनिच्छासे होनेपर इसे दूर करनेको प्रार्थनामें जाने-के पहले ही जाग जाना, उठकर दतुअन करना और ताजा रहनेका नि-श्चय करना चाहिए। तथापि शरीर काबूमें न रहे तो, छोटा हो या बड़ा, उसे शर्म न रखकर खड़ा हो जाना चाहिए।

(ख) प्रार्थनामें एक दूसरेसे सटकर नहीं बैठना चाहिए। डंडेकी नाईं सीधा बैठना और धीरे-धीरे सांस लेना चाहिए।

(ग) प्रार्थनामें श्लोक, भजन आदिके उच्चारण और ध्वनि सीखने-की कोशिश करनी चाहिए। जबतक ये न आवें तबतक जोरसे न बोलकर

---

१. इस विषयपर अधिक पढ़ना चाहें तो गांधीजीकी 'अनीतिकी राहपर' पढ़ें। प्रकाशक—सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली।

मनमें ही बोलना चाहिए। यह भी न आवे तो केवल रामनामें लेना चाहिए।

(घ) प्रार्थनामें जो कुछ बोला जाता हो उसका अर्थ समझ लेना और उसका मनन करना चाहिए।

(ङ) प्रार्थना व्यक्तिगत और सामुदायिक, दोनों महत्त्वकी हैं। दोनों एक-दूसरेकी पोषक हैं। व्यक्तिगत प्रार्थनाका मूल्य न समझनेके कारण सामुदायिक प्रार्थनामें रस नहीं मिलता, और सामुदायिक प्रार्थनाका लाभ व्यक्तिको नहीं प्राप्त होता। अतः प्रत्येकको व्यक्तिगत प्रार्थना भी नियमितरूपसे करनी चाहिए।

(च) इसके दो समय तो खास हैं: उठते ही और रातको आंख मूंदनेसे पहले। किंतु यह न मानें कि दो ही समय व्यक्तिगत प्रार्थनाके हैं। प्रत्येक क्रियामें और प्रत्येक क्षणमें ईश्वरको साक्षी समझना व्यक्तिगत प्रार्थना है। इसके लिए किसी खास मंत्र या भजनकी आवश्यकता नहीं है। इसमें चाहे जिस नामसे, चाहे जिस ढंगसे और चाहे जिस स्थितिमें ईश्वरको याद करना है। हर सांसके साथ रामनाम निकलनेकी स्थितिको पहुंचना प्रार्थनाका आदर्श है।

(छ) तथापि, न समझें इसमें समय लगनेकी बात। इसमें समयकी आवश्यकता नहीं है बल्कि अमूर्छित रहनेकी--नित्य सावधानता और जागृतिकी--तथा मलिनताके त्यागकी आवश्यकता है।

खंड २ :: धर्ममार्ग

१

सर्वधर्म-समभाव

१. प्रत्येक युग और प्रत्येक राष्ट्रमें सत्यके तीव्र शोधक और जन-कल्याणके लिए अत्यंत लगन रखनेवाले विभूतिमान पुरुष और संत पैदा होते हैं। उस युगके और उस प्रजाके दूसरे लोगोंकी अपेक्षा वे सत्यका कुछ अधिक दर्शन किये हुए होते हैं। इनका कुछ दर्शन सनातन सिद्धांतोंका होता है, और कुछ अपने जमानेकी परिस्थितिमेंसे पैदा हुआ होता है। इसके सिवा ऐसा होता है कि कितने ही सिद्धांत अपने सनातन स्वरूपमें उनकी समझमें आनेपर भी, उन्हें कार्यरूपमें परिणत करनेको उद्यत होने-पर उस युग और देशकी स्थितिके अनुकूल मर्यादाके अंदर ही उसकी प्रणाली उन्हें सूझती है। इन्हीं सबमेंसे जगतके भिन्न-भिन्न धर्मोंकी उत्पत्ति हुई है।

२. इस प्रकार विचार करनेवाला किसी धर्ममें सत्यका सर्वथा अभाव नहीं देखता, वैसे ही किसी धर्मको संपूर्ण सत्यके रूपमें नहीं स्वीकारता। उसकी दृष्टिमें सब धर्मोमें परिवर्तन और विकासकी गुंजाइश लगेगी और उसे लगेगा कि विवेकपूर्वक अनुसरण करनेपर प्रत्येक धर्म उस प्रजाका कल्याण साधनेको सशक्त है और जिसमें व्याकुलता है उसे सत्यकी झांकी कराने तथा शांति और समाधान देनेमें समर्थ है।

३. ऐसा मनुष्य यह अभिमान नहीं रखता कि उसीका धर्म श्रेष्ठ है, और मनुष्यमात्रको अपने उद्धारके लिए उसीका स्वीकार करना आवश्यक है। वह उसे छोड़ेगा भी नहीं और उसके दोषोंकी ओरसे आंखें भी नहीं मूंद रक्खेगा। वह जैसा अपने धर्मके प्रति आदर-भाव रक्खेगा, वैसा ही आदर-भाव दूसरे धर्मों और उनके अनुयायियोंके प्रति भी रक्खेगा, और

चाहेगा यही कि प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने धर्मके ही उत्तमोत्तम सिद्धातों-का यथायथ पालन करे।

४. निंदकबुद्धि पर-धर्ममें छिद्र ही देखेगी। सत्यशोधकका प्रत्येक धर्मम सत्यका जो अंग विकसित जान पड़ेगा, उसका वह अंश ग्रहण कर लेगा। इससे सत्यशोधक पुरुषके बारेमें प्रत्येक धर्मके अनुयायीको ऐसा लगेगा मानो वह उसीके धर्मका सच्चा पाबंद है। इस प्रकार सत्यशोधक अपने जन्म-धर्मका त्याग किये बिना सब धर्मोंका अनुयायी-सा प्रतीत होगा।

२

धर्म और अधर्म

१. सत्यशोधक सब धर्मोंके प्रति समभाव रक्खेगा, पर यह अधर्मका तो विरोध ही करेगा; फिर वह अधर्म चाहे अपने या दूसरे धर्मके नाम-पर जारी हो या स्वतंत्ररूपसे चल रहा हो।

२. सब धर्मोंमें कुछ अपूर्णता होनेके कारण प्रत्येक धर्ममें धर्मके नामपर अधर्म पैठ जाता है। और यह दाखिल होता है, धर्मके नामपर, अतः धर्म और अधर्ममें भेद करना कठिन हो जाता है, पर यह करना ही पड़ता है।

३. किसी भी धर्ममें हुए प्रसिद्ध व्यक्तियोंके जीवन-चरित्रमें दोष मालूम होनेपर उसपर जोर देकर उस धर्मको कोसना निंदकोंका तरीका है। परंतु ऐसे दोषको दूसरोंके लिए आचरणमें लानेके नियमकी भांति पेश करना अधर्म है और उसका विरोध किया जा सकता है।

४. साधारणतः यह कहा जा सकता है कि जो आचार सत्य आदि यम-नियमोंके इस प्रकारसे विरोधी हैं कि वे इन धर्मोंके विकासका नहीं बल्कि उनके भंगके पोषनेवाले हैं, वे अधर्म हैं। इसका तय करना है तो विकट, पर भक्तिमान और विवेकी सत्यशोधकको यह सूझ जाता है।

५. सत्यशोधक अधर्मका सर्वत्र विरोध करेगा, पर उसीके साथ वह अधर्मी व्यक्ति और अधर्मके फर्कपर नजर रक्खेगा। अधर्मका विरोध

करते हुए भी यह अधर्मी व्यक्तिका द्वेष नहीं करेगा। इसका दूसरा अर्थ यह हुआ कि वह अधर्मीका सत्य और अहिंसामय साधनोंद्वारा ही विरोध करेगा। अधर्मका नाश करनेके लिए असत्य, हिंसा आदि अधर्मयुक्त साधनोंका उपयोग करके मुकाबलेमें अधर्म नहीं करेगा।

३

सत्याग्रह

१. इस प्रकार हम सत्याग्रहके तत्त्वपर आ पहुंचे हैं। सत्याग्रहकी संक्षिप्त व्याख्या यह हो सकती है--सत्यादि धर्मोंके स्वयं पालन करनेका आग्रह, और अधर्मका सत्यादि साधनोंके द्वारा ही विरोध।

२. विरोध करनेमें खासकर अहिंसा-भंगकी संभावना रहती है, इसलिए अहिंसापर जोर देकर कहा जाता है कि अधर्मका अहिंसामय साधनसे विरोध, यह सत्याग्रह है। 'सत्याग्रह'के नामसे जिस युद्धविधिका प्रचार हुआ है उसके शुद्ध प्रकारकी यह स्थूल व्याख्या दी जा सकती है।

३. अधर्मके विरोधके लिए आचरणीय सत्याग्रहका सविस्तर विचार आगे किया जायगा। यहां इतना ही कहना बस होगा कि सत्यादि धर्मोंके स्वयं पालन करनेके आग्रहमें जितनी सिद्धि प्राप्त की होगी, उतनी ही अधर्मके विरोधरूप सत्याग्रहके आचरण करनेकी शक्ति आवेगी और उसकी उचित विधियां सूझती जायंगी।

४. पर ऐसी शक्तिका आना सत्याग्रही जीवनका दूसरा और दृश्य फल माना जायगा। यह दूसरा फल उपजे या न उपजे, इसका मुख्य फल तो ऐसे जीवनके परिणाममें पैदा होनेवाली सत्यरूपी परमेश्वर-की पहचान ही है।

४

हिंदूधर्म

१. एक हिंदूके लिए हिंदूधर्म यथेष्ट है। सत्यशोधकको अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनेके लिए इसमें यथेष्ट सामग्री मिल जाती है।]

२—सनातन हिंदूधर्मके श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास, संतोंकी संस्कृत अथवा प्राकृत वाणी इत्यादि धर्मग्रंथ हैं। इन ग्रंथोंमें भिन्न-भिन्न ऋषि, मुनि, कवि और विचारकोंने धर्मके भिन्न-भिन्न अंग विविध प्रकारसे समझाये हैं। इन सारे वचनोंका मूल्य एक-सा नहीं लगाया जा सकता और कितने ही तो अग्राह्य भी लगते हैं। तथापि नीर-क्षीर-विवेकसे देखनेवाले जिज्ञासुको अपनी धर्मवृत्तिका पोषक साहित्य इसमेंसे यथेष्ट परिमाणमें मिल सकता है।

३. सनातन हिंदूधर्म एक सच्चिदानंद परमात्माको ही स्वीकार करता है और उसे मन-वाणीसे परे बतलाता है। तथापि, सब परमात्मा-रूप है इस सिद्धांतसे, वैसे ही विभूतिके सिद्धांतसे उपासककी रुचिके अनुसार अनेक प्रकारकी कल्पनाओं और रूपकोंके द्वारा भिन्न-भिन्न आदर्शोंके प्रदर्शक देवी-देवताओंकी, और ऐतिहासिक व्यक्तियोंको अवतार रूपमें वर्णन करके उनकी, और सद्गुरुकी उपासना करनेकी भी उसमें स्वतंत्रता है। सनातन हिंदूधर्मकी दृष्टि ऐसी दो उपासनाओंके बीच विरोध नहीं देखती, बल्कि मेल साधती है। इससे सनातन हिंदूधर्ममें मूर्तिपूजाका निषेध नहीं है।

४. सनातन हिंदूधर्म पुनर्जन्मके और मोक्षके सिद्धांतोंको स्वीकारता है और मोक्षको अंतिम तथा श्रेष्ठ पुरुषार्थ समझता है, तथा उसके लिए यम-नियम, व्रत-संयम, तीर्थयात्रा इत्यादि साधनोंको मानता है।

५. सनातन हिंदूधर्ममें वर्णाश्रम-व्यवस्थाको बड़ा महत्त्व दिया गया है; यह भी कहा जा सकता है कि यही उसकी विशेषता है। इसलिए हिंदूधर्मको वर्णाश्रम धर्मका नाम दिया जाय तो भी बेजा नहीं होगा। इसी

प्रकार, गोरक्षा भी इस धर्मका सबसे बड़ा बाह्य स्वरूप है। पर इन दोनोंका विचार स्वतंत्ररूपसे अन्यत्र होगा।

६—"**वैष्णव जन तो तेने कहिये**" इस पदमें दिये गये लक्षण सनातन हिंदूधर्मके सच्चे चिन्ह हैं।

५

गीता-रामायण

१. हिंदूधर्ममें अनेक माननीय ग्रंथोंके होते हुए भी नित्यके और साथ ही गहरे अध्ययन और मननके लिए संस्कृतमें गीता और हिंदीमें तुलसीदासका 'रामचरितमानस', दो ग्रंथ सबसे अधिक महत्त्वके और साधारणतः पर्याप्त समझे जा सकने हैं।

२. तत्त्वज्ञान और सूक्ष्म विवेचनके लिए गीता, और काव्यमय कथानकोंद्वारा साधारण मनुष्योंके भी समझने और ग्रहण करने योग्य प्रकारसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य आदिके निरूपणके लिए तुलसी-रामायण, ये दो हिंदूधर्ममें बेजोड़ पुस्तकें हैं।

३. अनासक्तियोग गीताका ध्रुवपद है: अर्थात् कर्मके फलकी अभिलाषा छोड़कर कर्तव्य-कर्मोंको सतत करते रहनेका उपदेश उसकी ऐसी ध्वनि है जिसे कभी भुलाना नहीं चाहिए। इसमें कर्ममात्रका निषेध नहीं किया गया है, न यही कहा गया है कि कर्ममें विवेक मत करो। इसमें दुष्कर्मका निषेध है और सत्कर्मका भी फलासक्तिको छोड़कर करनेका उपदेश है। सत्य, अहिंसादिकके संपूर्ण पालनके बिना इस योगकी सिद्धि असंभव है।

४. गीताका पाठ, वाचन और मनन कभी पुराना नहीं पड़ता। ज्यों-ज्यों इसका विचार किया जाय और उसके अनुसार आचरणमें उतरते जायं त्यों-त्यों इसकी पुनरावृत्तिमेंसे नया-नया बोध मिलता ही जायगा। इतना ही नहीं, बल्कि गीतामें प्रयुक्त महाशब्दोंके अर्थ युग-युगमें बदलते रहेंगे और विस्तार पाते जायंगे।

खंड ३ :: समाज

१

वर्णाश्रम

१. पूर्वकथनानुसार हिंदूधर्मके लिए योग्य नाम वर्णाश्रमधर्म है। वर्णाश्रमव्यवस्था इस धर्मकी विलक्षणता प्रकट करती है। इसका मूल वेदमें ही है।

२. प्रत्येक धर्मकी कुछ न कुछ विशेषता होती ही है। हिंदुओंने जो धर्म पाला है उसे अगर कोई विशेष और सार्थक नाम दिया जा सकता है तो वह वर्णाश्रमधर्म ही है।

३. इस कारण, कोई हिंदू वर्णाश्रमकी उपेक्षा नहीं कर सकता। इस प्रथाको समझकर दोषपूर्ण मालूम होनेपर इसका ज्ञानपूर्वक त्याग किया जा सकता है; और यदि यह प्रथा धर्मकी निर्दोष विशेषता हो तो, (और वह है, इसलिए) इसका पोषण तथा पुनरुद्धार करना चाहिए।

४. वर्णाश्रम-व्यवस्था समाज-रचनाकी मनस्वी व्यवस्था नहीं है, पर इसके पीछे सिद्धांतका ज्ञान मौजूद है। अर्थात् उसके साथ मानवमात्रको लागू होनेवाले नियमोंका ज्ञान है।

५. इस प्रकार वर्णाश्रमकी शोधता हिंदू-धर्ममें हुई है अवश्य, पर इसके पीछे जो सिद्धांत है वह हिंदुओंको ही लागू होता है, औरोंको नहीं, ऐसा नहीं है। भले ही आज जगत उसे स्वीकार न करे। उतना वह खोवेगा। आज नहीं तो कल जगतको उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा।

६. लेकिन, वर्ण और आश्रम दोनोंका आज तो लोप ही हो गया है। आश्रमका नाम और कर्म दोनोंसे। वर्णका लोप नामसे भले ही न समझा जाय, तथापि कर्मसे तो हुआ ही है।

हम दोनोंका क्रमशः विचार करेंगे।

२

वर्णधर्म

१. वर्ण अर्थात् धंधा। वर्णधर्मके सिद्धांतको संक्षेपमें इस प्रकार रख सकते हैं। जो मनुष्य जिस कुटुंबमें पैदा हो उसका धंधा, यदि वह नीति-विरुद्ध न हो तो, धर्म-भावनासे करे; और ऐसा करते हुए जो अर्थ-प्राप्ति हो उसमेंसे सामान्य आजीविकाभरको ही रखकर शेषको सार्व-जनिक कल्याणमें लगावे।

२. वर्ण यह धर्म है, अधिकार नहीं। मतलब इसका यह है कि हरेक वर्णको चाहिए कि अपने-अपने कर्मको धर्म समझकर पालन करे। उदर-पोषण यह उसका यत्किंचित् फल है। वह मिले या न मिले तो भी समझदारको अपने धर्ममें रत रहना चाहिए।

३. इसके सिवा, उसका अर्थ यह है कि वर्ण-वर्णके बीच ऊंच-नीच-का भेद न हो, बल्कि वर्णमात्र समान माने जायं।

४. वर्णका निर्णय सामान्यतः जन्मसे किया जाता है; किसी अंशमें कर्मसे भी किया जाता है। सामान्यतः मनुष्यको अपना पैतृक धंधा करनेकी कला विरासतमें मिलती है। यह नियम सर्वव्यापक है, और जाने-अनजाने सभी उसका अल्पाधिक पालन करते हैं। हिंदू पूर्वजोंने कठिन तपश्चर्यासे इस महान नियमकी खोज की और यथाशक्ति उसका पालन किया। जगत यदि इस धर्म अथवा नियमका अनुसरण करे तो सर्वत्र संतोष फैल जाय, झूठी प्रतिस्पर्धा मिट जाय, ईर्ष्या दूर हो जाय, कोई भूखों न मरे, जन्म-मरण बराबर रहे और व्याधियां दूर रहें।

५. इस धर्म-व्यवस्थामें ब्राह्मण ब्रह्मको पहचानने और पहचनवानेमें समय बिताये और यह माने कि उसे उसकी आजीविका भगवान देते हैं। क्षत्रिय प्रजापालनका धर्म पाले, और इसके लिए आजीविकार्थ मर्यादित द्रव्य ले। वैश्य प्रजाके कल्याणके लिए खेती, गोपालन या व्यापार करे; जो अर्थलाभ हो उसमेंसे आजीविकाभरको लेकर बाकीका लोक-

कल्याणके काममें लगावे। इसी प्रकार शूद्र परिचर्या करे, और उसे वह धर्म समझकर ही करे।

६. और फिर, इस व्यवस्थामें जिसके पास जो मिल्कियत होगी उसका वह सारी प्रजाके हितमें रखवाला या संरक्षक होगा; अपनेको कभी उसका मालिक न मानेगा। राजा अपने महलका या प्रजासे उगाहे करका मालिक नहीं बल्कि रखवाला है। अपने पेट भरनेभरको लेकर बाकीका उपयोग प्रजाके लिए करनेको वह बंधा हुआ है। यानी अपनी कार्यदक्षतासे वृद्धि करके प्रजाको वह किसी न किसी रूपमें वापस कर देगा। यही बात वैश्यके लिए है।

७. शूद्रका तो कहना ही क्या? उसके पास कोई मिल्कियत कभी होनेवाली ही नहीं है; इसलिए जो शूद्र केवल धर्म समझकर परिचर्या ही करता है, और जिसे मालिक होनेका लोभतक भी नहीं है वह हजार-हजार वंदनाके योग्य है और सर्वोपरि है।

८. पर, इस शूद्रके धर्मकी स्तुति तभी शोभती है, जब ये तीन वर्ण अपनेको प्रजाका सेवक समझते, और अपने पासकी संपत्तिको सार्वजनिक उपयोगके लिए रखनेवाले संरक्षक साबित करते हों; यह धर्म लादा तो जा ही नहीं सकता।

९. वर्णको धर्मके रूपमें बताकर उसके शोधकने यह सूचित किया है कि उसके पालनमें बलात्कारकी गंधतक भी नहीं होनी चाहिए। उसके पालनसे ही जगत निभ सकता है, उसके पालनसे ही जगतका निस्तार है, यह समझकर हरेकको अपने-अपने वर्णधर्मका पालन करते-करते मर मिटना है; दूसरोंसे जबर्दस्तीसे पालन नहीं करवाना है।

१०. समझदारके लिए इस धर्मका पालन सरल है।

११. इस प्रकारका वर्णधर्म समताका धर्म है; केवल साम्य'वाद' नहीं। जगतमें जो विषमता फैली हुई है, उसकी जगह समताका साम्राज्य हो जाय। सब धंधे प्रतिष्ठामें और कीमतमें एक समान माने जायं। राजा और राजाके वजीरसे लगाकर भंगीतक सब एक समान कमावें। तीन वर्ण ज्यादा कमावें और शूद्र कम कमावें, अथवा क्षत्रिय महलमें

चढ़कर बैठे, और ब्राह्मण भिक्षुक होनेके कारण झोंपड़ीमें रहे, वैश्य बड़े बाग-बगीचे बसावे और शूद्र बिना घरबारका गुलाम बनकर रहे, ऐसी दयनीय दशा, जहां वर्णधर्मका पालन होता हो वहां हो ही नहीं सकती, न होनी चाहिए।

१२. इस प्रकारके वर्णधर्मका आज लोप हो गया है। कितने ही लोग अपनेको ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य बताते हैं जरूर, परंतु अपनेको शूद्र बतानेमें सब लज्जित होते हैं। इस प्रकार वास्तवमें वर्ण नामको रह गया है। तथापि व्यवहारमें यदि हम 'वर्ण' संज्ञा रख सकते हों तो हम सब शूद्र ही कहे जायंगे। और वास्तवमें तो शूद्र भी नहीं कहला सकते। क्योंकि, शूद्रवर्ण भी धर्म है; अतः स्वेच्छासे स्वीकार करनेकी वस्तु है, और उसमें लज्जाको स्थान नहीं हो सकता। ऐसा है तो नहीं, इसलिए केवल कालके वश होकर हम शूद्रता अर्थात् दासत्वको प्राप्त हुए हैं।

१३. यदि कहा जाय कि वर्णोंके करनेके काम तो होते ही रहते हैं, इसलिए जो मनुष्य जिस वर्णका कर्म करता है उस वर्णका उसे मानें तो वर्णधर्मका लोप नहीं हुआ। लेकिन यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि जहां कर्ममें खिलत-मिलत होती है, जहां सब स्वेच्छासे मनमाना कर्म करते हैं, वहां वर्णधर्मका पालन नहीं, बल्कि वर्णका संकर ही है।

१४. वर्णमें ऊंच-नीच-भावकी गुंजाइश ही नहीं है। पर दीर्घ कालसे हिंदूधर्ममें धर्मके नामपर ऊंच-नीचका भेद पैठ गया है। वह वर्ण-धर्मका वक्ररूप है, विकराल रूप है। जगतमें आज फैले हुए कलहका मुख्य कारण ऊंच-नीचका भेद ही है। इस युद्धका निवारण वर्णधर्मके पालनसे हो सकता है।

१५. लेकिन, जहां तीन वर्ण अपनेको ऊंचा मानकर शूद्रको नीच मानते हैं, वहां शूद्र उनकी ईर्ष्या करे और जो सम्पत्ति तीन वर्ण लेकर बैठ गये हैं उसमें हिस्सा बंटानेकी इच्छा रक्खे तो इसमें कोई नई बात नहीं है। दुःखकी बात भी नहीं है।

१६. आज रोटी-बेटी-व्यवहारकी मर्यादामें वर्णधर्मके पालनकी समाप्ति हो जाती है। व्यवहारोंमें मर्यादाकी, यानी खाद्याखाद्य-विवेककी, साथ ही

बेटा-बेटीके लेन-देनमें नियमकी जरूरत जरूर है। पर इन दोके ऊपर वर्णधर्म अवलंबित नहीं है, और उन्हें वर्णधर्मके साथ संयुक्त कर देनेमें हिंदू-धर्मको बहुत नुकसान पहुंचा है।

१७. वर्णके और आजकी जातियोंके बीच जमीन-आसमानका अंतर है। आजकी जातियां और उपजातियां लुप्त हुई वर्ण-व्यवस्थाके खंडहरोंके समान हैं। उनके पीछे वर्णभेद सरीखा कोई व्यापक नियम मौजूद नहीं हैं। बल्कि वह आकस्मिक कारणोंसे और रूढ़िसे उत्पन्न हुई प्रथा है। यह वर्ण-व्यवस्था नहीं है, बल्कि जातिबंधन है। इसमें हिंदूजातिका नुकसान है, और इसलिए उसका नाश होना चाहिए।

१८. शास्त्रोंमें वर्ण चार बताये गये हैं। पर चार ही होने चाहिएं, यह वर्णधर्मका अनिवार्य अंग नहीं है। वर्णधर्मके पुनरुद्धारका विचार करने बैठें तो शायद वर्ण चारके बजाय ज्यादा या कम करनेकी जरूरत मालूम हो।

३

आश्रम

१. आश्रम-व्यवस्था भी प्रकृतिके नियमोंको व्यवस्थित रूपसे व्यवहार-में लानेके प्रयत्नमेंसे आई है।

२. सब वर्णके लोगोंको सब आश्रमोंका अधिकार हैं।

३. चारों आश्रम एक-दूसरेके साथ ऐसे संलग्न हैं कि एकके बिना दूसरेका पालन ही नहीं हो सकता।

४. ब्रह्मचर्याश्रममें मनुष्य जन्मसे ही है। इस कारण इसी आश्रम-को बिलकुल अनिवार्य कह सकते हैं। इस आश्रमको कभी न छोड़नेका अर्थात् यावज्जीवन ब्रह्मचर्य पालन करनेका, जो चाहे उसे अधिकार है। कम-से-कम पुरुषको २५ वर्षतक और स्त्रीको १८ वर्षतक इस आश्रमका पवित्रतापूर्वक सेवन करना चाहिए।

५. दूसरे सब आश्रमोंकी उज्ज्वलताका आधार इस आश्रममें रक्खे हुए पवित्र और संयमी जीवनपर है। इसलिए आध्यात्मिक दृष्टिसे

पहला आश्रम यही मुख्य आश्रम है। इस आश्रमके लोपसे हिंदूधर्मको और समाजको अत्यंत हानि पहुंची है। इस आश्रमको तेजस्वी बनाना प्रत्येक हिंदूका कर्तव्य है। पर इस आश्रमको आज शायद ही कोई पालता है।

६. गृहस्थाश्रमके विवाह-धर्मका विचार दूसरे प्रकरणमें किया जायगा। धर्म-मार्गसे प्रजाकी सम्पत्ति बढानेका विशेष भार इस आश्रमपर है।

७. गृहस्थाश्रम भोग-विलासके लिए है, यह खयाल भ्रमपूर्ण है। हिंदूधर्मकी सारी व्यवस्था ही संयमके पोषणके लिए है। अतः भोग-विलास हिंदूधर्ममें कभी अनिवार्य नहीं हो सकता। गृहस्थाश्रममें भी सादगी और संयम दूषण नहीं बल्कि भूषण ही हैं।

परंतु, संयमके आदर्शका पोषण करते हुए भी, कितने ही मनुष्य भोगोंके प्रति होनेवाले आकर्षणको नहीं रोक सकते। गृहस्थाश्रमके धर्म इन भोगोंकी मर्यादा और सेवनकी विधि तय कर देते हैं।

८. तथापि, आज जिसका सब लोग पालन करते हैं वह गृहस्थ 'वृत्ति' है—अर्थात् प्रजावृद्धिका कर्म है,—गृहस्थ 'धर्म' नहीं है। इसके द्वारा बहुत करके स्वेच्छाचार और व्यभिचारको ही पोषण मिलता है।

९. व्यभिचारी या स्वेच्छाचारी जीवनके अंतमें वानप्रस्थ या संन्यासको असंभव समझना चाहिए।

१०. भोगोंको घटाते-घटाते फिर इनके प्रति मोहको छोड़नेकी शक्ति प्राप्त होनेपर गृहस्थदम्पती ब्रह्मचर्य व्रतोंको धारण करके अथवा उन्हें फिर सतेज करके वानप्रस्थी बनते हैं। जिसने अपने राग-द्वेषपर पूरी विजय नहीं पाई है, परंतु इंद्रियोंको रोक सकता है और रोककर बैठा है, उसे वानप्रस्थी कह सकते हैं। इस आश्रमका आज लोप ही हुआ समझना चाहिए।

११. जिसने राग-द्वेषको पूरा-पूरा जीत लिया है; जो काया, वाचा और मन, तीनोंसे सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्यादि यमोंको पालता है, उसे संन्यासी हुआ कहा जा सकता है। ऐसा संन्यासी निष्कामभावसे सेवा-कार्य करता हुआ भी अपने निर्वाहका आधार भिक्षापर रखता है।

१२. आश्रमोंका बाहरी भेषसे संबध नहीं है।

४

स्त्री-जाति

१. स्त्री-जातिके प्रति रक्खा गया तुच्छ भाव हिंदू समाजमें घुसी हुई सड़न है, धर्मका अंग नहीं है। धार्मिक पुरुष भी इस प्रकारके तिरस्कार-भावसे मुक्त नहीं हैं, यह बात बतलाती है कि उस सड़नकी जड़ कितनी गहराईतक गई है।

२. स्त्री और पुरुषमें प्राकृतिक भेद है। इससे, नित्य-जीवनमें उनके अदा करनेवाले फर्जोंमें भी भेद होता है; तथापि दोनोंमें कोई ऊंचा या नीचा नहीं है, बल्कि ये दोनों समाजके एक सरीखे महत्त्वके और प्रतिष्ठापात्र अंग हैं।

३. पुरुष स्त्री-जातिको एक ओरसे दबाता है, अज्ञानमें रखता है, उसकी अवगणना और निंदा करता है। दूसरी ओरसे उसे अपने भोगोंको तृप्त करने के लिए केवल साधन समझता है, और इस उद्देश्यसे उसे पुतलीको भांति अपनी इच्छाके अनुसार सजाता है तथा उसकी खुशामद करता है और इस तरह उसकी भोगवृत्तिको उत्तेजित करनेका प्रयत्न करता है। इन दोनों प्रकारोंसे केवल स्त्री-जातिका ही नहीं, बल्कि अपना और सारे समाजका महान् अधःपतन हुआ है।

४. पालन-पोषण और शिक्षणमें लड़के और लड़कीमें भेद करनेवाले और लड़कीके प्रति कम कर्तव्य-बुद्धि रखनेवाले माता-पिता पाप करते हैं।

५. वयःप्राप्त पुरुष जितनी स्वतंत्रताका अधिकारी है उतनी ही स्त्री भी है।

६. स्त्री अबला नहीं है, बल्कि अपनी शक्तिको पहचाने तो पुरुषसे भी अधिक सबला है। वह माता-रूपमें जिस रीतिसे बालकको गढ़ती है और पत्नी होकर जिस प्रकार पतिको चलाती है, बहुत करके पुरुष वैसे ही बनते हैं।

७. स्त्री-जातिमें छिपी हुई अपार शक्ति उसकी विद्वत्ता अथवा

शरीर-बलके बदौलत नहीं हैं, बल्कि इसका कारण उसमें विद्य-मान तीव्र श्रद्धा, भावनाका वेग और अत्यंत त्यागशक्ति है। वह स्वभाव-से ही कोमल और धार्मिकवृत्तिकी होती है, और पुरुष जहां श्रद्धा खोकर ढीला पड़ जाता है, अथवा झूठे अंदाज लगानेमें उलझा रहता है, वहां वह धीरज रखकर सीधे मार्गपर स्थिर भावसे बढ़ती है।

८. जगतमें धर्मकी रक्षा मुख्यतः स्त्री-जातिके बदौलत हुई है।

९. स्त्री-जाति अपना बल और कार्य-क्षेत्रको दिशा ठीक-ठीक समझ ले तो वह कभी खुदको पुरुषकी दबैल नहीं मानेगी, और पुरुषका तथा उसकी प्रवृत्तिका अनुकरण करनेका ही आदर्श अपने सामने न रखेगी। वह पुरुषको रिझाने अथवा आकर्षित करनेके लिए शरीरको नहीं सजावेगी, किंतु अपने हृदयके गुणोंसे ही सुशोभित होनेका प्रयत्न करेगी।

१०. स्त्री-जातिको सार्वजनिक कार्योंमें पुरुषके बराबर ही हाथ बंटाना चाहिए। मद्यपान-निषेध, पतित स्त्रियोंके उद्धार इत्यादि कितने ही काम ऐसे हैं कि उन्हें स्त्री ही अधिक सफलतापूर्वक कर सकती है।

११. स्त्रियोंको विवाह करना ही चाहिए, यह मिथ्या भ्रम है। उसे भी यावज्जीवन ब्रह्मचर्य पालनेका अधिकार है।

१२. स्त्री अपनी इच्छाके विरुद्ध पतिकी कामवासना तृप्त करने-को मजबूर नहीं है। ऐसा करनेवाला पति व्यभिचारीके समान ही दोष करता है।

५

अस्पृश्यता

१. अस्पृश्यता हिंदू धर्मका अंग नहीं हे, बल्कि उसमें घुसी हुई एक सड़न है, वहम है, पाप है और उसको दूर करना प्रत्येक हिंदूका धर्म है, उसका परम कर्तव्य है।

२. अस्पृश्य माने जानेवाले लोग चार वर्णके ही अंग हैं।

३. जन्मके कारणसे मानी गई इस अस्पृश्यतामें अहिंसाधर्मका तथा

सर्वभूतात्म-भावका निषेध हो जाता है। इसकी जड़में संयम नहीं है, बल्कि उच्चताकी उद्धत भावना ही इसमें समाई हुई है। इसलिए यह स्पष्ट रूपसे अधर्म ही है। इसने धर्मके बहाने लाखों या करोड़ोंकी हालत गुलामोंकी-सी कर डाली है।

४. सार्वजनिक मेले, बाजार, दुकान, मदरसे, धर्मशाला, मंदिर, कुएं, रेल, मोटर इत्यादिमें जहां दूसरे हिंदुओंको आजादीसे जाने और उनसे लाभ उठानेका अधिकार हो, वहां अस्पृश्योंको भी अवश्य अधिकार है। इन अधिकारोंसे उन्हें वंचित रखनेवाला अन्याय करता है। इस अधिकारको स्वीकारनेवाले उनपर मेहरबानी नहीं करते, बल्कि केवल अपनी ही भूलको सुधारते हैं।

५. सैकड़ों वर्षोंके अमानुष व्यवहार और संस्कारी वर्णोंके संसर्गसे वंचित रहनेके परिणाम-स्वरूप अस्पृश्योंकी स्थिति इतनी अधिक दयनीय हो गई है, और वे इतने अधिक नीचे गिर गये हैं कि उन्हें दूसरे वर्गोंकी कोटिमें चढ़ानेके लिए संस्कारवान हिंदुओंके विशेष प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। इसलिए अस्पृश्य तथा दूसरी दलित या पिछड़ी कौमोंकी सेवाके लिए अपना जीवन अर्पण करना, और उस कार्यमें उदार हृदयसे सहायता करना, इस युगके संस्कारी हिंदुओंके लिए अति पवित्र कर्म है।

६. इस दृष्टिसे दलित जातियोंके लिए विशेष संस्थाओं और सुविधाओंकी जरूरत है। परंतु ऐसी खास संस्थाओं और सुविधाओंकी व्यवस्था कर देनेसे उनका सार्वजनिक संस्थाओं और सुविधाओंसे लाभ उठानेका अधिकार चला नहीं जाता है।

७. अछूतोंकी स्थिति सुधारनेके लिए यह जरूरी नहीं है कि उनसे उनके परंपरागत पेशे छुड़वाये जायं अथवा उन पेशोंके प्रति उनके मनमें अरुचि पैदा की जाय। ऐसा नतीजा लानेके लिए की गई प्रवृत्तिसे उनकी सेवा नहीं, असेवा होगी। बुनकर बुनता रहे, चमार चमड़ा कमाता रहे और भंगी पाखाना साफ करता रहे और तब भी वह अछूत न समझा जाय तभी कह सकते हैं कि अस्पृश्यताका निवारण हुआ।

८. भंगी समाजकी गंदगीको दूर करके उसे नित्य साफ-सुथरा रखने-

का पवित्र कार्य करता है। यह कार्य नियमित रूपसे न हो तो सारा समाज मरणासन्न दशाको पहुच जाय। यह कहना यथार्थ नहीं है कि वे अपने पेशेके बदौलत संस्कारहीन तथा निर्बल स्थितिको प्राप्त हुए है। इन पेशोंको दूसरे पेशोके बराबर ही समझना चाहिए। दूसरे पेशों-की तरह इस पेशेमें भी सुधारोंकी गुंजाइश है; परंतु यह बिलकुल भिन्न प्रश्न है। संस्कारवान हिंदू इस पेशेको अख्तियार कर दिखा करके उसमें बहुत सुधार कर सकते है।

९. अछूतोंमे पैठी हुई मुर्दार मास खानेकी प्रथा ही बतलाती है कि उनकी दरिद्रता कितनी करुणाजनक है। इस दरिद्रताके दूर होने और इन्हें समझानेसे यह टेव दूर हो सकती है।

१०. सिर्फ अपना आचार अच्छा रखनेसे कोई सस्कारवान नही बन सकता। स्वयं जिसे हम अशुद्ध आचार मानते हों, उसे करनेको दूसरे-को विवश होना पड़े, इस प्रकारका व्यवहार अ-सस्कारिताकी निशानी है। अपनेको संस्कारवान माननेवाले वर्ण अछूतोंको अपना जूठन या बासी, उतारन या अशुद्ध हुई वस्तु दें, और पशुकी अपेक्षा भी उनके साथ बुरा व्यवहार करें, यह अ-संस्कारिता है और उसी प्रकार पाप भी।

६

खाद्याखाद्य-विवेक

१. मनुष्य सर्वभक्षी प्राणी नहीं है। उसके खाद्य-पदार्थोकी हद अवश्य है। पर वर्ण धर्मके साथ इसका संबंध नही है। इसमे छूत-छात दोषरूप है।

२. स्वच्छता इत्यादिके नियमोंका पालन करते हुए और खाद्याखाद्य-के विवेककी रक्षा करते हुए सब वर्णोके एक पंक्तिमें खानेमें कोई भी दोष नहीं है। किसी खास वर्णके आदमीका ही बनाया भोजन होना बिल-कुल जरूरी नहीं है।

३. रोटी-व्यवहारको जो महत्त्व आज दिया जाता है वह छूआ-छूत-

का पोषक ही है। वह संयमके बदले उलटा भोगको उत्तेजन देनेवाला बन गया है।

४. इस कारण, जाति,कौम, धर्म इत्यादि भेदोंकी दृष्टिसे किया गया चौका-भेद और पंक्ति-भेद धर्मका लक्षण नहीं है। ऐसे भेदकी भावनासे हिंदूधर्मको हानि पहुंची है।

७

विवाह

१. यह विचार पापमय है कि विवाहद्वारा चाहे जितना भोग करनेकी छूट मिल जाती है। स्त्री-पुरुषका भोग एक ही उद्देश्यसे धर्मयुक्त हो सकता है : वह है दोनोंकी संतानेच्छा। इस इच्छाको सिद्ध करनेका शुद्ध प्रकार विवाह है।

२. विवाहेच्छु युवती या युवक अपने लिए वर या वधू स्वयं पसंद करें, यह साधारणतः इष्ट नहीं है। इसमें मानसिक व्यभिचारके बारंबार तथा कभी-कभी शारीरिक व्यभिचारके भी प्रसंग पैदा होते हैं। इसके सिवा, कम अनुभवी युवावस्था तथा भोगेच्छाके आवेगमें जो चुनाव होता है उसके बुद्धिमत्तापूर्वक होनेकी संभावना बहुत कम रहती है।

३. इसलिए विवाहेच्छुको चाहिए कि वह अपनी इच्छा तथा विवाहके विषयमें अपनी शर्तें और निर्णय जो उसने कर रक्खे हों (जैसे कि विधवाके साथ, जातिके बाहर, पैसेके लेन-देनके बिना विवाह करना इत्यादि) उन्हें अपने बड़ों या बडों जैसे मित्रोंको बता दे, और उनके अनुसार अपने लिए योग्य वर या वधू तलाश कर देनेकी प्रार्थना करे।

४. जो बड़े हैं वे युवती या युवकके स्वभाव, गुण-दोष तथा विचारोंको ध्यानमें रखकर उनके योग्य जोड़ीकी खोजका प्रयत्न करें। दोनोंको एक-दूसरेके गुण-दोषोंसे परिचित कर दे; दोनोंके जीवनमें कोई अवश्य जानने योग्य प्रसंग हुए हों तो उनका खुलासा कर दें। चुनावमें जिस बातको विशेष महत्त्वपूर्ण होनेकी संभावना हो वह छिपाई न जाय।

५. सब बातें बतानेके बाद यदि युवक-युवतीको परस्पर मिलकर परिचय अथवा बातचीत करनेकी जरूरत मालूम हो तो मर्यादापूर्वक उन्हें ऐसा करनेकी सुविधा बड़ोंको कर देनी चाहिए।

६. इसके फलस्वरूप दोनों एक-दूसरेको स्वीकार करनेका निश्चय करें तो उनका संबंध कर दिया जाय। दोनोंमेंसे एक भी अनिश्चित हो या रजामंद न हो तबतक संबंध न किया जाय। उस दशामें बड़ोंको दूसरा स्थान खोजना चाहिए।

७. संबंध होनेके बाद और विवाहके पहले स्पर्शसबंधी उचित मर्यादामें रहकर और ब्रह्मचर्य-पालनका आग्रह रखते हुए दोनों एक-दूसरेके साथ पत्र-व्यवहार रक्खें या मिलें-जुलें तो इसमें दोष नहीं है। संयमी स्त्री-पुरुष इस अवधिमें भी अपने भावी वर या वधूसे भोगकी बातें या कल्पनाएं न करके एक दूसरेका उत्कर्ष साधनेवाली बातें और कल्पनाएं करेंगे।

८. विवाहके बाद भी वे मानेंगे कि विवाह एक धर्म है। धर्ममें मर्यादा, विवेक आदि होते हैं। अतएव मर्यादा और विवेकपूर्वक रहनेवाले दम्पती गृहस्थधर्मका पालन करते है; जो मर्यादा छोड़ते है वे धर्मनिष्ठ नहीं बल्कि स्वेच्छाचारी है।

९. संततिकी इच्छाके बिना विवाह-संबंध नहीं होना चाहिए। पर विवाह करनेके बाद दोनों संयमी जीवन बिताना चाहें तो विवाहको व्यर्थ समझनेकी जरूरत नहीं है। समाजमें अनेक आवश्यक कार्य स्त्री-पुरुष दोनोंके मिलकर करनेके होते है। उन कर्मोंमें दोनों एक-दूसरेके धर्म-सहचारी बनकर अपने निकट संबंधका उपयोग सेवाके निमित्त करें।

१०. प्रजोत्पादनकी इच्छा न हो, अथवा प्रजा उत्पन्न करनेकी योग्यता या शक्ति दोमेंसे किसी भी एककी न हो, अथवा एक दूसरेकी रजामंदी न हो, तथापि यदि पति-पत्नी भोग करते है तो उसे पाप समझना चाहिए।

८

संतति-नियमन

१. बिना विचारे संतान बढ़ाते जाना, या संतानकी इच्छा करते रहना, जड़ताका चिह्न है ।

२. आज संततिकी बिना विचारे होनेवाली वृद्धिको रोकनेकी आवश्यकता है; पर उसका धर्मयुक्त मार्ग एक ही है—जो ब्रह्मचर्य है ।

३. संतति-नियमनके कृत्रिम उपाय धर्म तथा नीतिके विरुद्ध और परिणाममें विनाशकी ओर ले जानेवाले हैं । इससे समाजका सब तरहसे अधःपात होता है ।

९

दम्पतीमें ब्रह्मचर्य

१. विवाहित स्त्री-पुरुषको ऋतुकालमें भोग करना ही चाहिए, यह खयाल गलतीसे भरा हुआ है । यह धारणा भी गलत है कि दोमेंसे एककी इच्छा न हो तो भी उसे दूसरेकी भोगेच्छा तृप्त करनी ही चाहिए ।

२. इससे दोमेंसे एककी विषयेच्छा इतनी मंद पड़ जाय कि वह अपने शरीरको काबूमें रख सके तो उसे ब्रह्मचर्य लेनेका अधिकार है । ऐसा करते समय वह अपने साथीका सहकार तो चाहेगा, पर संमतिको आवश्यक नहीं मानेगा ।

३. पति असंमत हो तो स्त्रीके ऐसे निर्णयसे उसकी स्थितिके कठिन होनेकी संभावना अवश्य है । अपना धर्म जिसे स्पष्ट हो गया है ऐसी स्त्री सत्याग्रहके बलसे इस कठिनाईको सहन कर ले और जो दुःख पड़े उसे बर्दाश्त कर ले ।

४. पतिके ऐसे निश्चय करनेपर भी प्रबल भोगेच्छा रखनेवाली स्त्रीकी स्थिति कठिन हो जाती है । क्योंकि दोनों स्थितियोंमें कानून और लोकमत पत्नीके प्रतिकूल है । पर इस तरह धर्म-भावसे

ब्रह्मचर्य-व्रत स्वीकार करनेवाला पति अपनी पत्नीका रास्ता सुगम बना देगा। वह ऐसे योग्य पुरुषकी तलाशमें उसकी सहायता करेगा जो कानूनकी परवा न करके अपनेको उस स्त्रीके साथ धर्म-विवाहसे बंधा हुआ मानेगा और समाज तथा कानूनकी ओरसे जो कठिनाइयां पैदा होंगी उन्हें सहन कर लेगा। इस प्रकार कानूनमें सुधार करनेका रास्ता भी वह सुगम कर देगा। ऐसा पति न मिल सकने तक उसे आदर-पूर्वक रक्खेगा।

१०

विधवा-विवाह

१ हिंदू विधवा त्याग और पवित्रताकी मूर्ति है। वह माताकी भांति सबके लिए पूज्य है। उसे अशुभ समझनेवाला हिंदू-समाज महान अपराध करता है। शुभ कार्योंमें उसकी उपस्थिति और आशीर्वाद प्राप्त करनेका अवश्य प्रयत्न करना चाहिए। पवित्र विधवाको समाजका भूषण समझकर उसके मान और प्रतिष्ठाकी रक्षा करनी चाहिए।

२ किंतु स्त्री-जातिके प्रति प्रचलित तुच्छ भावने विधवाके साथ अन्याय करनेमें कोई कसर उठा नहीं रक्खी। इससे हिंदू विधवाकी स्थिति अछूतोंके समान ही दयाजनक हो गई है।

३. विधवा त्यागकी मूर्त्ति है, पर इससे वैधव्य जबर्दस्ती पलवाने-की वस्तु नहीं है। बलात्कारसे कराया हुआ त्याग उसमें विद्यमान दिव्यताका नाश करता है और उसे पूजनीय तथा आदर्श बनानेके बदले दयापात्र बना डालता है।

४ इस कारण जितना विधुर हुए पुरुषको पुनर्विवाह करनेका अधि-कार माना गया है, उतना ही विधवाको भी है।

५. बालविधवा बालविवाहका परिणाम है। १५-१६ वर्षकी उम्रसे पहले कन्याका विवाह होना ही नहीं चाहिए। ऐसे विवाहके फलस्वरूप प्राप्त वैधव्य तो वैधव्य ही नहीं है। ऐसी विधवाको कुंवारी

कन्याके समान मानकर मां-बापको उसका विवाह करनेकी उतनी ही चिंता करनी चाहिए जितनी कि वे कुंवारी कन्याकी करते हैं और उसका विवाह कर देना चाहिए।

६. विवाहेच्छु हिंदू युवकोंको ऐसी बालविधवाओंसे ही शादी करनेका आग्रह रखनेकी सिफारिश करना उचित होगा। यदि युवक विधुर फिरसे विवाह करना चाहे तो उसे विधवासे ही विवाह करनेको धर्म समझना चाहिए।

११

वर्णांतर-विवाह

१. बेटी-व्यवहारके विषयमें संयम, सुख और वर्ण (अर्थात् धंधेकी विरासत) की रक्षाकी दृष्टिसे, अपने ही वर्णमें विवाह करनेकी मर्यादा साधारणतः इष्ट है। परंतु आज तो वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है। इस दशामें स्वधर्मियोंमें गुण-कर्मको ध्यानमें रखकर विवाह-संबंध करना उचित है। ऐसा वर्णांतर-विवाह निर्दोष है।

२. परदेशी या परधर्मीके साथ विवाह करनेमें धर्मका प्रतिबंध नहीं है। पर उसमें अनेक विघ्न आनेकी संभावना होनेके कारण ऐसे संबंध अपवाद-रूप ही शोभा देते हैं, और उसमें भी हेतु पारमार्थिक होना चाहिए।

खंड ४ :: सत्याग्रह

१

सत्याग्रहीका कर्त्तव्य

१. दूसरे खंडमे सत्याग्रहसंबंधी जो साधारण प्रकरण (तीसरा) है उसे पाठक इसके पहले फिरसे देख जायं।

२. व्यक्ति और समाजके बीचका संबंध ऐसा है कि जिस समाजमें-से व्यक्तिका उद्भव होता है उस समाजकी सब मिलाकर धर्ममें जितनी प्रगति हुई रहती है उससे व्यक्तिकी प्रगति बहुत अधिक आगे नही बढ़ सकती। भूतकालके किसी महापुरुषकी तुलनामें आजका महापुरुष धर्म-विचार या धर्म-साधनाके किसी विषयमें आगे बढ़ जाय तो इसका कारण बहुत-कुछ यही हो सकता है कि उस महापुरुषके समयके समाजकी अपेक्षा आजका समाज उस तरहके धर्म-विचार और धर्म-साधनामें आगे बढ़ा हुआ है। हम आशा रख सकते है कि इसी तरह मानव-समाजमें उत्तरोत्तर धर्मकी शुद्धि होती रहेगी।

३. अतएव यह संभव नहीं है कि कोई व्यक्ति अपने चारों ओर फैले हुए अधर्मकी ओरसे अपनी आंखें मूदकर अपनी बहुत अधिक आध्यात्मिक उन्नति कर ले।

४. इस प्रकार, यदि एक व्यक्तिको केवल अपनेमे ही सत्य-अहिंसादिक धर्मोकी सिद्धि करनी हो तो भी समाजमें प्रचलित अधर्मका विरोध करनेका उसका कर्तव्य होता है।

५. जिस अंशतक अपने अंदर सत्यादि गुणोंका उत्कर्ष हुआ होगा, उस अंशतक उसका विरोध करना उसे अपना कर्तव्य जान पड़ेगा और उसमें वह अपनी शक्ति लगा सकेगा।

२

सत्याग्रहीकी मर्यादा

१. सत्याग्रहका तत्व अभी संपूर्ण रूपसे परिपक्व शास्त्र नही बना है। इसका प्रयोग अभी बाल्यावस्थामें है, और इसका प्रयोग करने तथा इसकी शक्तिको शोधने और आजमानेवाला कोई पूर्ण शास्त्री अभीतक दिखाई नहीं देता।

२. इसलिए, इसमें सब प्रकारके अधर्मो, अन्यायों, कलहों आदिके निवारण करनेका कोई तैयार चुटकुला मिलनेकी आशा कोई न रक्खे। सत्याग्रही यह श्रद्धा रखकर कि सत्य और अहिंसामें ये शक्तियां अवश्य हैं, उनकी खोजमें प्रयत्नशील रहे।

३. इस बीच अनेक प्रकारके अधर्मो, अन्यायों, कलहों आदिके निवारणमें इसकी असमर्थता देखकर निराश न हो, न निष्क्रिय ही बने।

४. जो कोई अधर्मोको दूर करनेके लिए यह सत्याग्रहमार्ग नही शोध सकता उसके अंदर हिंसात्मक उपायोंकी योजना चलती रहेगी। सत्याग्रही उन उपायोंका केवल निषेध करके, या अपना शारीरिक अथवा आर्थिक सहयोग न देकर तटस्थ रहकर उस हिंसाके लिए अपने नैतिक उत्तरदायित्वको कम नही कर सकता। वह उसी अवस्थामें उस जिम्मेदारीसे मुक्त समझा जा सकता है कि जब वह अपनी अहिंसात्मक योजना पेश करे और उसे सिद्ध कर दिखावे।

५. इसका यह अर्थ नहीं है कि सत्याग्रहीका केवल निषेध करना या तटस्थ रहना हमेशा ही गलत समझा जायगा। अनेक बार इतना और यही कर्तव्य हो सकता है।

६. पर, ऐसे अवसर आ सकते है कि जब सत्याग्रहीको हिंसामें कमोबेश सक्रिय भाग भी लेना पड़े। उदाहरणके लिए, अपराधीको सजा कराना, लड़ाई छिड़नेपर अपने राज्यकी सहायता करना, आदि। जिस राज्यमें वह रहता है और जिससे रक्षण प्राप्त करता है उस राज्यको यदि

वह अहिंसाका मार्ग नहीं दिखा सकता तो हिंसाका महज विरोध करने या असहयोग करनेसे वह हिंसाकी जिम्मेदारीसे बचा नहीं रह सकता।

७. लेकिन, ऐसी मदद करते हुए भी वह अपनी सहायताकी रीतिमें अपने अंदर विद्यमान सारी सत्यनिष्ठा और अहिंसा-वृत्तिका परिचय देगा और अहिंसात्मक मार्ग खोजनेका प्रयत्न करेगा।

३

सत्याग्रहका बुनियादी सिद्धांत

१. मनुष्य चाहे कितना ही स्वार्थांध हो जाय, और कितने ही घातक या कुटिल उपायोंसे काम लेनेकी उसकी तैयारी क्यों न हो, तथापि उसके अंतस्तलमें यह प्रतीति रहती है कि सत्य ही सर्वोपरि है और इसलिए उसके प्रति आदर और भय बना ही रहता है। मनुष्यमात्रके हृदयमें स्थित सत्य-विषयक ऐसा गुप्त निश्चय, आदर और भय, यह सत्याग्रह-शास्त्रकी बुनियाद है। इसीको मनुष्यके हृदयमें रहनेवाली 'अंतःकरणकी आवाज' कह सकते हैं।

२. स्वार्थके वशीभूत मनुष्य कुछ समयतक इस अंतःकरणकी आवाज-की ओर दुर्लक्ष्य करनेका अथवा उसे दबा देनेका प्रयत्न करता है; परन्तु, उसका विरोधी यदि सच्चा सत्याग्रही साबित हो तो अंतमें उस आवाजको सुने बिना उसका छुटकारा नहीं होता।

३. यह आवाज अनेक प्रकारसे उसके सामने प्रकट होती है; इसे अपने अन्यायका निश्चय हो जाना और उसके लिए पश्चात्ताप होना तो यह उसका श्रेष्ठ प्रकार है। इसीको हृदय-परिवर्तन कहते हैं।

४. परंतु इससे कम तीव्रतासे भी यह आवाज उठ सकती है : जैसे, लोक-लज्जाके रूपमें, अथवा सर्वनाशके भयके रूपमें।

५. जब सत्याग्रहीका विरोधी कोई एक व्यक्ति नहीं, बल्कि एक राष्ट्र, कौम या तंत्र होता है, तब ऐसा अंतर्नाद उसके किसी विशेष चरित्रवान व्यक्तिको पहले सुनाई पड़ता है और उसका पहले हृदय-परिवर्तन होता

है। वह व्यक्ति फिर अपने मनुष्योंको वह आवाज सुनाता है और सत्यका पक्ष लेकर उनका विरोध भी करता है।

६. विरोधीके हृदयको 'अंतःकरणकी आवाज' के प्रति जाग्रत करना प्रत्येक सत्याग्रहका साध्य है। अन्यायको दूर करनेके लिए विरोधीको जो-जो कदम उठाने चाहिए वे इस माध्यमसे बादको परिणामरूपमें अपने आप पैदा होते जाते हैं।

४

सत्याग्रहके सामान्य लक्षण

१. सत्य-अहिंसादि साधनोंद्वारा ही अधर्मका विरोध किया जा सकता है, यह सामान्य नियम सर्वत्र लागू होता है।

२. अधर्मको मिटानेका धर्मयुक्त उपाय अवश्य होना चाहिए, इस श्रद्धासे उत्कटरूपसे विचार करनेवाले सत्याग्रहीको विरोध करनेकी पद्धति मिल ही जाती है।

३. सत्याग्रह ऐसा उपाय है कि जिसमें सत्याग्रहीके ही कष्ट उठानेकी बात रहती है; विरोधी पक्षको कष्ट देनेकी मंशा होती ही नहीं। इससे, यदि सत्याग्रही भूल करे तो उसके लिए उसीको आवश्यकतासे अधिक कष्ट सहना पड़ेगा।

४. लेकिन इसके कारण सत्याग्रहके फलस्वरूप विरोधीके साथ कटुता बढ़ती नहीं बल्कि घटती है,और सत्याग्रहके अंतमें दोनों पक्ष मित्र बन जाते हैं।

५. सत्याग्रही तबतक अधर्मका विरोध करनेके लिए कोई कदम उठाने-की जल्दी नहीं करेगा जबतक कि उसे सत्याग्रहकी उचित विधि न सूझ जाय। बल्कि शांतिसे ईश्वरकी प्रार्थना और जनताकी दूसरी सेवाएं करता रहेगा। वह श्रद्धा रक्खेगा कि ऐसा करते-करते उसे एक दिन स्पष्ट मार्ग सूझ जायगा, और उस समय उसपर चलनेका बल भी उसमें आ गया होगा; अथवा ईश्वर ही अपनी अनेकविध शक्तियोंके द्वारा उसका रास्ता निकाल देगा।

६. सत्याग्रहका शस्त्र संघ-बलपर अवलंबित नहीं रहता है। पर संघ-बल उसकी शक्ति बढ़ा सकता है। सच्चे और गलत सत्याग्रहके बीचका भेद परखनेकी यह एक कुंजी है। यदि सत्याग्रहकी सूचना करनेवाला स्वयं अकेला पड़ जाय और अपनी सूचनापर अमल करनेको तैयार न हो तो कहा जा सकता है कि वह सच्चा सत्याग्रही नहीं है। सच्चा सत्याग्रही अपनेको स्पष्ट प्रतिभासित होनेवाले पथपर चलनेको अकेला तैयार हो जाता है।

७. पर इससे यह भी समझना नहीं चाहिए कि कोई अकेला सत्याग्रह करनेको तैयार हो जाता है तो वह हमेशा सही रास्ता ही लेता है। तथापि वैसी भूलका परिणाम तीसरे और चौथे पैरेमें जैसा बतलाया गया है वैसा होता है।

८. सत्याग्रही झूठी प्रतिष्ठाके फेरमें नहीं रहता। उसे अपनी विचार-पद्धतिमें या योजनामें गलती मालूम होनेपर, चाहे जितना आगे बढ़ गया हो तो भी ठहर जानेमें, अथवा 'पीछे हटने' की आवश्यकता जान पड़े तो वैसा करनेमें, और अपनी भूलको स्वीकार करनेमें, तथा जो हानि हो उसे सहन कर लेने या उसके लिए उचित प्रायश्चित्त स्वीकार करनेमें वह शरमाता नहीं है। क्योंकि, सत्यकी अपेक्षा किसी भी दूसरे विचार या कारणको सत्याग्रही कम महत्त्वकी चीज समझता है। इससे उसका इष्ट कार्य बिगड़ता नहीं है बल्कि सुधरता है, और बादको यह साबित होता है कि उसकी जाहिरा 'पीछे हट' की कार्रवाई दरअसल 'आगे बढ़' थी।

५

सत्याग्रहके प्रसंग

नीचेके नियमोंको केवल दिशा-सूचक ही समझना चाहिए।

१. सत्याग्रही अपनेपर होनेवाले निजी अन्यायके लिए झटसे सत्याग्रह करने नहीं जायगा। ऐसे अन्यायोंको वह साधारणतः सह लेगा, और सहन करते-करते विरोधीको प्रेमसे जीतनेकी कोशिश करेगा। अपने साथ

होनेवाले अन्यायकी जड़में कोई सामाजिक अहितकी बात होगी, तभी, उसका सामान्यरीतिसे सत्याग्रहद्वारा वह विरोध करेगा।

२. इसी तरह व्यक्तिद्वारा होनेवाले अन्याय तथा समाज या सत्ताधारीकी ओरसे होनेवाले इन दो अन्यायोंमे सत्याग्रहीके लिए भेद करनेकी आवश्यकता होती है। बलवान व्यक्तिद्वारा निर्बलका पीडन इस अपूर्ण मानव-समाजमें होता ही रहेगा। ऐसे हरेक झगड़ेमें सत्याग्रहीका बीचमें पड़ना शक्य नहीं है। वहां उसे अपनी शक्ति, मर्यादा, अन्यायका प्रकार, उसका तात्कालिक महत्त्व, न्याय प्राप्त करनेके सर्वमान्य और विधि-विहित साधन आदिका विचार करना होगा। इतना होते हुए भी, जहां स्पष्ट आवश्यकता प्रतीत हो, वहां अपना प्राण देकर भी वह अन्यायको रोकनेका प्रयत्न करेगा।

३. सामाजिक और राजनीतिक अन्यायोंमें भी विवेकसे काम लेनेकी आवश्यकता रहती है। एक अधर्म या अन्याय ऐसा होता है कि जिसमे कानून अधर्मी या अन्यायी नही होता, पर उसका अमल अधर्म और अन्यायसे होता है, और अमल करनेवाला अपने अधर्म या अन्यायको उस कानूनके नीचे छिपाता है अथवा उसे अपना हथियार बनाता है। इसमे उसे न्याय या धर्मका ढोंग करना पड़ता है। यह भी अपूर्ण मानव-समाजमे होता ही रहेगा। मानव-समाजमे ज्यों-ज्यों सद्गुणोंकी और परस्पर सम-भावकी सामूहिकरूपसे वृद्धि होगी त्यों-ही-त्यों यह स्थिति सुधरेगी। इसमें न्याय और धर्मका जो ढोंग करना पड़ता है वही वस्तु दंभके आचरणकर्ताकी सत्यको दी हुई श्रद्धांजलि है, ऐसा मानकर संतोष करना पड़ता है। तथापि ऐसा पाखंड सार्वत्रिक हो जाय तो उसके लिए भी सत्याग्रहका मौका और मार्ग निकल सकता है। जैसे कि, सर्वत्र दमन चलता हो तो अपना बचाव न करना, बल्कि सजा भोग लेना, यही, स्वतंत्ररूपसे, सत्याग्रहकी एक विधि हो सकती है।

४. पर, जो अन्याय या अधर्म बिल्कुल बेहयाईसे—इस भावसे कि तुमसे जो कुछ हो सके कर लो—होता हो, अथवा उसीको न्याय, धर्म या कानूनका नाम दिया गया हो, तो वहां सत्याग्रह कर्तव्यरूप हो जाता है। क्योंकि, ऐसे अधर्म और अन्यायको सहन कर लेनेवालेकी सत्त्वहानि होती है।

६
सत्याग्रहके प्रकार

१. सत्याग्रह जितनी रीतियोंसे हो सकता है उन सबको गिनाया नहीं जा सकता। अधर्मका स्वरूप, उसकी तीव्रता, अधर्मका आचरण करनेवाले व्यक्ति या समाजकी खासियतें, उसका और अपना संबंध, हमारा तथा जिसका पक्ष हमने लिया है उसके जीवनमें उस अधर्मको मिटा डालनेके लिए प्राप्त सिद्धि--इन सब बातोंपर सत्याग्रहकी पद्धति, प्रकार और मात्राका आधार रहता है।

२. साधारणतः यह कहा जा सकता है कि एक कुटुंबमें रहनेवाला व्यक्ति अन्याय करनेवाले दूसरे व्यक्तियोंके साथ जिन-जिन पद्धतियोंका अवलंबन कर सकता है वे सब पद्धतियां उचित रूपमें समाजमें भी लागू की जा सकती हैं।

३. इस प्रकार इसमें समझाने-बुझानेसे शुरू करके, उपवास, असहयोग, सविनय-भंग, उस कुटुंब--समाज--राज्य इत्यादिका त्याग अपने प्राप्य अधिकारका शांतिके साथ अमल, और यह सब करते हुए जो संकट आ जायं उनकी बर्दाश्त इत्यादि अनेक प्रकार होते हैं।

४. इनमेंसे उचित उपाय और उसकी उचित मात्राके चुनावमें विवेक अथवा तारतम्य बुद्धिसे काम लेना चाहिए। यह अनुभवसे आनेवाली बात है, पर कुछ उपयोगी सूचनाएं अगले प्रकरणोंमें दी गई हैं।

५. परंतु याद रखना चाहिए कि सत्याग्रह अभी अपूर्णरूपसे जोती हुई धरती है। जो तपस्वी मनसा-वाचा-कर्मणा, सत्य और अहिंसाका पालन करता हुआ इसकी शक्तियोंकी शोधमें मथेगा उसे इसके अनेक नये प्रकार मिलेंगे और उसे इसका बल अटूट प्रतीत होगा।

६. सत्याग्रहमें युद्धको रोकनेका सामर्थ्य अवश्य होना चाहिए। इस शक्तिका बाह्य स्वरूप कैसा होगा, यह आज नहीं कहा जा सकता। परंतु इसका अर्थ इतना ही है कि अधिक श्रद्धा रखकर इसकी शक्तियोंके शोधनमें श्रम करना चाहिए।

७

समझाना

१. विरोधीको समझाकर समाधानीसे काम करनेका प्रयत्न करना सत्याग्रहीका पहला लक्षण और सत्याग्रहकी पहली सीढ़ी है।

२. इस समझानेका एक भी उपाय वह उठा नहीं रखेगा। इसमें अपने धीरज और उदारताकी पराकाष्ठातक जायगा। इसके लिए बिचवईवाले मित्रोंकी मध्यस्थताकी वह अवगणना नहीं करेगा, और जहांतक सिद्धांतका भंग न होता होगा वहांतक वह सब छूट-छाट देनेको तैयार रहेगा।

३. समझानेका प्रयत्न निष्फल जानेपर और विशेष प्रकार-का कदम उठानेका समय आनेपर वह विरोधीको एक अंतिम मौका दिये विना आगे नहीं बढ़ेगा।

४. आगे बढ़नेके बाद भी समझौतेके लिए वह सदा तैयार रहेगा। और ठगा जानेकी जोखिम उठाकर भी वह अपनी समाधान-प्रियता और फिरसे 'क' 'ख' से शुरू करनेकी तैयारी दिखावेगा; क्योंकि सत्याग्रही असहयोगी बन जाने, विरोधी बन जाने जोरकी लड़ाई लड़ते रहनेपर भी अपने रग-रगमें व्याप्त सहयोग, मित्रता और सुलहकी इच्छाको नहीं गंवावेगा।

५. जबतक विरोधीके अंतरमें ऐसी आवाज न उठे कि जिससे उसका हृदय-परिवर्तन हो, तबतक कुछ अन्यायोंके दूर हो जानेपर भी, यह नहीं कहा जा सकता कि दिल साफ हो गया और सत्याग्रहका काम पूरा हो गया।

६. इस कारण, इस स्थितिसे पहले होनेवाले सब समझौतोंमें सत्याग्रही-को छूट-छाट देनी पड़ती है और कितने ही अन्यायोंको पी जाना पड़ता है। ऐसा करनेमें सत्याग्रही, असली अन्यायके विषयको छोड़े बिना, उसे दूर करानेके सिलसिलेमें विरोधीकी ओरसे हुए अन्यायोंके प्रति अपनी उदारवृत्ति दिखाता है।

८

उपवास

१. उपवासको सत्याग्रहके साधनके तौरपर काममे लानेमे अक्सर बहुत जल्दबाजी और भूलें होती हैं।

२. व्यक्तिके मुकाबलेके सत्याग्रहमें उपवासका जिस अंशतक उपयोग किया जा सकता है, उस अंशतक समाज अथवा तंत्रके मुकाबलेमें नहीं किया जा सकता।

३. व्यक्तिके मुकाबलेमें भी उपवासरूपी सत्याग्रह विवश होनेपर ही करना चाहिए। संभव है कि उपवाससे विरोधीकी न्याय या धर्मवृत्ति जाग्रत न होकर उसकी केवल कृपावृत्ति ही जागे, अथवा 'कलहका मुह काला' करनेकी वृत्तिसे सत्याग्रहीकी वह 'जिद' पूरी कर दे। इसे सत्याग्रहकी सफलता नहीं कह सकते।

४. व्यक्तिके प्रति किये गये सत्याग्रहमें यदि इस व्यक्तिमें पहलेका कोई निजी अथवा मित्रताका संबंध न हो तो उपवासके उपायसे काम लेना उचित नहीं है।

५. साधारणतः यह कहा जा सकता है कि उपवास-रूपी सत्याग्रह कुटुंबी, निजी मित्र, गुरु, शिष्य, गुरुभाई आदि निजी परिचित लोगोंके प्रति ही किया जा सकता है। इसी प्रकार, जो समाज अपना ही हो, और पहले इसके हाथसे हुई सेवासे उसका यह आदरपात्र हो गया हो, तो ही इस समाजके अन्यायके प्रति उपवास-रूपी सत्याग्रह किया जा सकता है।

६. व्यक्तिके प्रति सत्याग्रहमे निजी अन्यायके लिए तो कभी उपवास नही ही करना चाहिए। वह व्यक्ति यदि हमारे साथ मित्रताका दावा रखता हो, और किसी तीसरे व्यक्ति या वर्गके या स्वयं उसके अपने प्रति कोई अनुचित व्यवहार उससे होता हो, तो दूसरे उपायोंको आजमानेके बाद, उपवास किया जा सकता है।

७. तंत्रके प्रति किये गये सत्याग्रहमें उपवास आखिरी कदम है। जब सत्याग्रही पराधीन स्थितिमें हो, और सत्याग्रहके दूसरे उपायोंका

रास्ता इसके लिए बंद हो, तथा तंत्रद्वारा होनेवाला अधर्म उसे इतनी पीड़ा दे कि अधर्म या अन्यायको सहन करके जीना सत्त्वहीन या कायर बनकर जीने जैसा होजाय, तब प्राण छोड़ देनेकी तैयारीमे ही वह अनशन शुरू कर सकता है।

८. ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई है, इस बातका निर्णय करनेमें वह बहुत भावुकतासे काम नहीं लेगा; बल्कि उस तंत्रके चलानेवाले व्यव-स्थापकोंकी कठिनाइयोंका तथा उनकी पुरानी पड़ी आदतोंका भी उचित विचार करेगा और उनके लिए उचित गुंजाइश रखेगा। फिर, अनिवार्य और आकस्मिक अन्याय, और जान-बूझकर किये गये अन्याय अथवा अन्यायी नियमोंमें भी वह विवेक करेगा। इसके सिवा, इसमें भी निजी अन्यायोंको वह दिल कड़ा करके सहन कर लेगा। क्योंकि मनुष्य जब जान-बूझकर अन्यायको सहन करता है, तब उसकी सत्त्व-हानि नहीं होती, किंतु दीनता, भय अथवा सिर्फ जीने रहनेके मोहसे अन्यायको सहता है तब सत्त्व-हानि होती है।

९. एक ओरसे सत्याग्रह-रूपी उपवास शुरू करना और दूसरी ओरसे अपनी मांगको मंजूर करानेके लिए विरोधीके अफसरोंसे उसपर दबाव डलवानेका प्रयत्न करना संगत नहीं है। ऐसे उपवासको सत्याग्रह नहीं कह सकते।

१०. अपने अथवा मित्रोंके या साथियोंके दोषोंके प्रायश्चित्तके रूपमें, या मित्र अथवा साथियोंको उनकी किसी शुद्ध प्रतिज्ञापर दृढ़ रखनेके लिए, उपवास करना यह इस प्रकरणके अर्थमें सत्याग्रह नहीं है किंतु तपश्चर्या है। विवेकपूर्वक की गई ऐसी तपश्चर्याके लिए जीवनमें स्थान है; पर उसकी चर्चाके लिए यह जगह नहीं है।

६
असहयोग

१. जहां पहले सहयोगसे दोनों पक्षोंका काम चलना आया हो वहीं असहयोगरूपी सत्याग्रह आजमाया जा सकता है।

२. इसमें असहयोगीकी सहायताके बिना जहां विपक्षीका काम चल सकता है वहां असहयोगका अर्थ दूसरे पक्षका त्याग अथवा अपनेभरकी शुद्धि इतना ही होता है। सत्याग्रहमें इसकी भी गुंजाइश है। जैसे, मालिकको दूसरे बहुत नौकर मिल सकते हैं फिर भी मालिकके अधर्ममें हाथ बंटानेकी इच्छा न रखनेवाला नौकर अपना इस्तीफा पेश करदे, अथवा दूसरे बहुत से लोग शराबखाना चलानेको तैयार बैठे हों फिर भी कोई कलालका पेशा छोड़ दे तो यह इस प्रकारका असहयोग कहलायेगा। इसी प्रकार अधर्ममें हठपूर्वक रहनेवाले कुटुंबी, मित्र इत्यादिका त्याग भी ऐसा ही सत्याग्रह है।

३. जहां ऐसी परिस्थिति हो कि हमारी मददके बिना दूसरे पक्षका काम चल ही न सकता हो वहां असहयोग बहुत ही उग्र सत्याग्रह है। अतः वह तभी आरंभ किया जा सकता है जब सत्याग्रहीको अपना मार्ग स्पष्ट धर्मरूप जान पड़े। इसमें विपक्षीका काम मेरे बिना नहीं चल सकता यह बात सत्याग्रही भूलता नहीं और इस वस्तुस्थितिमें उसे अपना बल दिखाई देता है। इससे विपक्षीको परेशान करनेके लिए भी इसका उपयोग होनेकी संभावना है।

४. जब विपक्षी अपने सहयोगका सर्वथा दुरुपयोग करता जान पड़े और उसके द्वारा निर्दोषोंको पीड़ा पहुंचती दिखाई दे तब तो ऐसा असहयोग उचित और आवश्यक ही हो जाता है।

५. असहयोगमें विरोधीके जो-जो काम उसकी प्रत्यक्ष सहायताके बिना न चल सकते हों उन सबमेंसे वह अपनी सहायता हटा लेगा। जहां उसकी प्रत्यक्ष सहायता न मिलती हो पर विरोधीको महत्त्व मिलता हो या उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती हो वहां भी वह ऐसी सहायता हटा लेगा और इससे स्वयं उसको जो लाभ मिलता हो वह छोड़ देगा।

६. विरोधी अपनी योजना सत्याग्रही पक्षकी सहायताके बिना नहीं चला सकता यह अनुभव कराना इस असहयोगका लक्ष्य है। इसलिए सत्य-अहिंसादि साधनोंद्वारा यह असहयोग यहांतक बढ़ाया जा सकता है जिससे वह योजना या काम रुक जाय।

७. इस असहयोगमें किस क्रम और कितनी तेजीसे आगे बढ़ना चाहिए यह अनुभवसे मालूम होता है। पर असहयोगका मार्ग ग्रहण करनेवालेको यह प्रतीति हो जानी चाहिए कि विरोधीका काम अथवा व्यवस्था इतनी दूषित है कि उसकी जगह दूसरी व्यवस्था तुरत न हो सके तो भी वर्तमान व्यवस्थाका टूट जाना अधिक इष्ट है।

८. असहयोगका दुरुपयोग होना संभव है इसलिए सत्याग्रही असहयोग और अ-सत्याग्रही असहयोगका भेद सावधानतापूर्वक समझ लेनेकी आवश्यकता है। सत्याग्रहमें कष्ट-सहनकी बात रहती ही है, इसलिए; यदि असहयोग करनेवालेको कुछ भी कष्ट न उठाना पड़े तो उस असहयोगके सत्याग्रह न होनेकी बहुत संभावना है।

१०

सविनय अवज्ञा

१. सविनय अवज्ञा दो तरहकी हो सकती है—किसी विशेष अन्यायकारी हुक्म या कानूनकी, केवल उसी हुक्म या कानूनको रद करानेभरके लिए; और असहयोगके ही खास कदमकी भांति, अन्याय—अधर्म किये अथवा निर्दोष या तटस्थ जनताको अनुचित असुविधा पहुंचाये बिना तोड़े जा सकनेवाले, आमतौरसे तमाम कानूनों की है।

२. मनुष्य चोरीसे किसी कानूनके डरसे ही दूर नहीं रहता बल्कि उसे अधर्म समझकर ही बचता है। अतः सविनय अवज्ञामें ऐसे कानून नहीं तोड़े जा सकते।

३. गाड़ीको सड़कके गलत बाजूसे न चलाना, रास्तोंपर आवागमनका नियमन करनेके लिए तैनात पुलिसके सिपाहीकी आज्ञा मानना, रातको देरतक

शोरगुल न मचाना, महत्त्वके कारण बिना रेलकी जंजीर न खींचना, इत्यादि हुक्मोंको तोड़नेसे निर्दोष तथा तटस्थ मनुष्योंको अनुचित असुविधा होती है, इसलिए ऐसी आज्ञाओंका भी भंग नही किया जा सकता।

४. किंतु मनुष्यके राज्यके प्रति असंतोष न दिखानेके दो कारण हो सकते हैं——राज्यसे उसे संतोष हो और इस कारण उसके प्रति उसकी भक्ति हो; अथवा कानूनसे डरकर। सत्याग्रही कानूनसे डरकर सरकारके प्रति असंतोष प्रदर्शित करनेसे न रुकेगा, और कही सविनय अवज्ञाकी आवश्यकता उपस्थित होनेपर तो ऐसे कानूनका तोड़ना फर्ज भी हो सकता है।

५. उसी प्रकार उचित सीमाके अंदर रहकर, अपने देशके किसी भी हिस्सेमें जाना और रहना तथा शांतिपूर्ण जुलूस निकालना, सभा-सम्मेलन, जन-सेवाके कार्य, अनुचित कार्यो अथवा बुराइयोंके खिलाफ पिकेटिंग आदि करना या इनका आयोजन जनताका साधारण अधिकार है; इस हक पर सरकारकी ओरसे प्रतिबंध हो तो सत्याग्रही उस आज्ञाको निम्न-लिखित कारणोंसे मानता है ——

(अ) सरकार प्रतिबंधकी आज्ञाके लिए जो दलीलें देती है वे उसे वाजिब मालूम होती हों; अथवा

(आ) ऐसे हुक्मोंको तोड़नें जानेमे सरकार और जनताके झगड़ेके मूल विषय किनारे रह जाते हों और दूसरे अप्रस्तुत विषय महत्त्व प्राप्त कर लेते हों, और जनताका ध्यान असली विषयकी तरफसे हटकर इन छोटी-छोटी बातोंपर लग जानेकी सभावना हो। ऐसे कारण न होनेपर ऐसी आज्ञाका सविनय अवज्ञा-रूप सत्याग्रह किया जा सकता है।

६. इसी तरह सत्याग्रही सरकारको इसलिए कर देता है, कि उस राज्यको कायम रखना वह इष्ट समझता है। पर यदि उसे यह निश्चय हो जाय कि इस राज्यव्यवस्थाका नाश करना ही धर्म है तो उस राज्यको कर देनेके कानूनोंको वह तोड़ सकता है; परंतु इसीके साथ उस राज्यसे किसी तरहका फायदा वह कोशिश करके न उठायेगा।

७. जहां प्रजासत्तात्मक शासन-पद्धति हो, या सरकार और जनता-

में सामान्यतः सहयोग हो, अथवा तीव्र आंदोलनका अभाव हो, वहां भी व्यक्तिगत अधिकारियों द्वारा गलतफहमीसे अथवा हुकूमतके नशेमें, अन्याय-कारी आज्ञाएं निकाली जानेकी सभावना रहती है। ऐसी फुटकर अन्यायी आज्ञाओंको सदा सविनय अवज्ञाका विषय बनाना उचित नहीं। यह नहीं मान लेना चाहिए कि ऐसे अन्यायोंको सह लेनेसे हानि ही होती है। उलटे, ऐसे समय जनता तथा नेताओंद्वारा दिखाया हुआ धीरज और उदारता जनताको अच्छी शिक्षा देनेवाली साबित होती है। जो इस प्रकार, भयसे नहीं बल्कि जान-बूझकर, अन्यायोंको सहलेना और आज्ञाका पालन करना जानते हैं वही, मौका पड़नेपर, सविनयअवज्ञा भी उत्तम रीतिसे कर सकते हैं।

८. यदि सविनय अवज्ञाका आंदोलन ऐसा रूप ग्रहण कर ले जिससे विरोधी अथवा तटस्थ लोगोंके जान-मालको हानि पहुंचती हो, या वे बेकसूर सताये जाते हों, और सत्याग्रही यह अनुभव करे कि वह इसे रोकनेमें असमर्थ है तो वह आंदोलनको स्थगित कर देगा और अपनी सारी ताकत उस हानि और उत्पीड़नको रोकनेमें लगा देगा।

११

सत्याग्रहीका अदालतमें व्यवहार

१. कानूनकी सविनय अवज्ञा करनेका संकल्प करनेवाले सत्याग्रहीको उस अवज्ञाके फलस्वरूप हो सकनेवाली पूरी सजा भुगतनेको तैयार रहना ही चाहिए।

२. अतः जब किसी ऐसे कानूनको भंग करनेका इलजाम लगाकर अधिकारी उसे पकड़ने आयें तो वह बिना किसी भी आनाकानीके गिर-फ्तार हो जाय।

३. अगर असलियत यह हो कि सत्याग्रहीने कानून तोड़ा ही न हो, फिर भी उसके खिलाफ झूठा सबूत पेश करके यह दिखाया जाय कि उसने कानून तोड़ा है, तो सत्याग्रहीको चाहिए कि वह अदालतकी कारर‌वाईमें कोई भाग न ले और अपना बचाव भी न करे। खुद उसका विचार उस कानूनको

तोड़नेका था ही, इसलिए बिना तोड़े ही जो सजा उसे मिल रही हो उसका उसे स्वागत ही करना चाहिए ।

४. कानून तोड़ा ही हो तो उसे चाहिए कि अपना अपराध स्वीकार कर ले और सजा मांग ले ।

५. सफाई न देनेके विषयमे नीचे लिखे अपवाद है —

(अ) सत्याग्रह-सिद्धांतके विरुद्ध होनेके कारण, जिस प्रकारके अपराधके करनेका उसने कभी इरादा ही न किया हो वैसे अपराधका इलजाम उसपर लगाया जाय तो सत्यकी खातिर वह सफाई पेश करे; जैसे कत्लके इलजाममें ।

(आ) सत्याग्रहियों अथवा अधिकारियोंके व्यवहार या नीतिकी कोई ऐसी बात पैदा हो गयी हो जो सिद्धांत या सार्वजनिक महत्त्वका विषय हो और उसमें सत्य प्रकट होनेकी आवश्यकता जान पड़ती हो, तो वहां सफाई देनी पड़ती है । जैसे, जब पुलिसने अत्याचार किया है इस बातकी दिलजमई करके सत्याग्रहीने यह हकीकत जाहिर की हो, पर इस बातको गलत बताकर झूठी बात प्रकाशित करनेका अभियोग उसपर चलाया गया हो, अथवा जब सत्याग्रहीपर मार-काट और दंगे-फसादको उत्तेजन देनेका इलजाम लगाया गया हो ।

(इ) जहां ऐसा जान पड़ता हो कि अधिकारियोंने उत्साहके अतिरेकमे या भ्रमसे ऐसे हुक्म निकाले हों जिनके बारेमें यह माननेके लिए कारण हो कि सरकारका इरादा वैसे हुक्म निकालनेका नही था, और जिन कानूनोंकी रूसे वे निकाले गये हों वे कानून वैसे अधिकार अधिकारियोंको देते है यह न माना जा सकता हो तथा उन हुक्मोंकी बदौलत ऐसे साधारण लोगोंके भी भारी संकटमें पड़नेकी संभावना हो जिनका इरादा सत्याग्रह करनेका न हो, वहां सफाई पेश करनेकी आवश्यकता उपस्थित हो सकती है ।

६. सत्याग्रही अदालतके काममे भाग न ले इसका अर्थ यह नही है कि वह अदालतके प्रति तुच्छता या अविनयका व्यवहार करे, अथवा असत्याचरण करे । अतः उसे किसी अधिकारीका अपमान या उपहास न करना

चहिए और न उसे तुच्छतासूचक उत्तर देना चाहिए। इसके सिवा वह अपना नाम-धाम न छिपाये; परंतु यदि अधिकारी मामलेसे संबंध न रखने वाली अथवा दूसरे अभियुक्तों या मनुष्योंसे संबंध रखनेवाली बातें पूछें तो सत्याग्रही उनका उत्तर देनेके लिए बाध्य नही है, और ऐसे जवाब देनेसे उसे विनयपूर्वक इनकार कर देना चाहिए।

७. जबतक सत्याग्रही पुलिसकी हिरासतमें होता है तबतक उसे नहलाने-धुलाने, खिलाने-पिलाने तथा सलाहकार और मित्रोंसे मिलनेकी सुविधा देना और उसके प्रति सभ्यताका व्यवहार करना पुलिसपर फर्ज है। उसी प्रकार सत्याग्रहीका भी कर्तव्य है कि वह पुलिसके साथ शिष्टताका व्यवहार करे। अगर पुलिसकी ओरसे अड़चनें पैदा की जायं, कष्ट दिया जाय, असभ्यताका वर्ताव या मारपीट की जाय तो सत्याग्रहीको चाहिए कि वह इसकी सूचना पुलिसके बड़े अफसरको (वह मिल सके तो) दे, और वह न मिल सके या ध्यान न दे तो अपनी शिकायत मजिस्ट्रेटके सामने रखे। लेकिन मजिस्ट्रेट भी उसपर ध्यान न दे तो यह मानकर कि ये तकलीफें सरकारकी सम्मतिसे दी जा रही हैं अपने सलाहकारोंको सारी हकीकतसे आगाह करके शांत रहना चाहिए।

८. यदि सत्याग्रहीको जुर्मानेकी सजा दी जाय तो वह खुद कभी जुर्माना जमा न करे और न किसीको जमा करनेकी प्रेरणा करे, बल्कि जमा न करनेका धर्म समझाये और उसके एवजमें कैदकी सजा भुगत ले।

९. जुर्माना वसूल करनेके लिए उसके घर यदि कुर्की ले जायी जाय तो अपना माल-असबाब कुर्क हो जाने दे, और इससे अधिक हानि होती हो तो भी सह ले, पर खुद जुर्माना न अदा करे। क्योंकि, जिसने अपनी सत्त्वरक्षाके लिए कानून तोड़ा है उसे उसके लिए सर्वस्व अर्पण करनेको तैयार रहना ही चाहिए। इस कारण अपने हाथों जुर्माना अदा करके वह अपनी सत्त्वहानि न होने देगा।

१०. सत्याग्रही ऊंचा दर्जा प्राप्त करनेका प्रयत्न न करे। वर्गीकरण-के नियमोंके पीछे कुछ अंशतक सत्याग्रहियों और मामूली कैदियोंमें, तथा सत्याग्रहियोंमें भी परस्पर भेद डालनेका हेतु रहता है। उसमें

ईर्ष्या, भय और लोभ भी आते हैं। इसके सिवा इसका उपयोग भी अक्सर मनमाने तौरपर और नीचेका दर्जा देकर अधिक सजा देनेके लिए किया जाता है। इसलिए वर्गीकरणकी यह नीति ही उचित नहीं है। फिर भी सत्याग्रहीको जो श्रेणी मिली हो उसकी सुविधा वह भोगता हो तो यह नहीं कह सकते कि इसमें सत्यका भंग होता ही है।

१२

सत्याग्रहीका जेलमें व्यवहार

१. सत्याग्रही जेलमें भी अपनी शिष्टता और विनय कदापि न छोड़े।

२. जेलके नियमोंको भंग करनेकी नहीं बल्कि साधारणतः पालन करनेकी वृत्ति रक्खे और जहां किसी महत्त्वके सिद्धांत या स्वाभिमानका प्रश्न हो वहीं नियमका विरोध करनेको उद्यत हो। इस दृष्टिसे वह कोई चीज चोरीसे जेलमें न लाये, किसीको घूस न दे तथा नियमके बाहर किसी प्रकारकी सुविधा प्राप्त करनेके लिए किसीकी खुशामद न करे।

३. श्रम करना जेलका ही नहीं बल्कि प्रकृति या धर्मका नियम है। अतः जेलके नियमानुसार दिया हुआ काम स्वीकार करने तथा करनेमें सत्याग्रही जी न चुराये।

४. जो काम समयकी अवधिके अंदर अपनी तबियत खराब होने या दूसरे कारणसे पूरा न कर सकता हो उसकी ओर उस कामके अधिकारीका विनय-पूर्वक ध्यान दिलाये। फिर भी वह काम उसे सौंपा जाय तो उसे करनेका यत्न करे और जो कष्ट हो वह सह ले।

५. डाक्टरी जांचमें उसे अपने रोग सही-सही बताने चाहिए। उसे कोई छूतवाली बीमारी हो तो उसे छिपाना न चाहिए।

६. कैदी अपने धर्म या नियमके विरुद्ध दवा या इलाज करानेको बाध्य नहीं है; पर इससे वह किसी दूसरी तरहकी दवा या इलाजकी

अधिकारपूर्वक मांग नही कर सकता। टीका लगवाने जैसे कुछ इलाजोंसे इनकार करनेपर वह दंडका पात्र भी समझा जासकता है। कैदीको अगर सच्चा धार्मिक आग्रह हो तो उसे यह सजा भुगत लेनी चाहिए; पर महज सजा भुगत लेनेको तैयार होनेके कारण ही झूठ-मूठ उसे धार्मिक रूप देकर आग्रही न बने।

७. अपने स्वास्थ्यके संबंधमें जो शिकायत हो और जिस सुविधाकी आवश्यकता हो उसे वह संबद्ध अधिकारीके सामने रक्खे। पर उसपर संतोष-जनक कार्रवाई न हो तो उसे भी सत्याग्रहके कष्टोंमें मानकर शांतिसे सहन करे। ऐसी सुविधाएं चुरा-छिपाकर प्राप्त करके स्वास्थ्यरक्षाका प्रयत्न न करे। इस प्रकार स्वास्थ्यरक्षा करनेसे अधिकारी यही समझेगा कि उसकी मांग अनुचित थी।

८. यदि उसके ऐसे कोई व्रत-नियम हों जिनका पालन जेलमें भी अवश्य कर्तव्य हो तो उनके बारेमें संबद्ध अधिकारीसे कहकर आवश्यक सुविधा मांग सकता है। पर ऐसे खास व्रत-नियमवाला व्यक्ति जेलके ही खर्चेसे उसका पालन करनेका आग्रह नहीं रख सकता, इसलिए यदि अपने खर्चेसे ऐसी सुविधा मिल जाय तो इससे उसे संतोष करना चाहिए। ऐसी सुविधा न मिले तो अपने व्रत-नियमका पालन करनेके लिए जो कष्ट उसे सहना पड़े वह सह लेना चाहिए।

९. केवल जेल-जीवनमें पालनेके लिए कोई खास व्रत-नियम सत्या-ग्रहीको स्वीकार न करना चाहिए।

१०. मार या गाली अथवा जूठा, गंदा, कच्चा, सड़ा या कीड़े पड़ा हुआ खाना खा लेना कैदीपर फर्ज नहीं है। अतः उसे ऐसी बातें सहन न कर लेनी चाहिए। मारपीट या गाली-गुफ्ताकी शिकायतकी सुनवाई न हो तो अधिक मार, गाली या सजाकी जोखिम उठाकर भी वह काम करनेसे इनकार कर सकता है और आवश्यक होनेपर उपवास भी करे।

११. न खानेलायक खुराक लेनेसे वह इनकार कर दे और उसके लिए जो सजा मिले उसे भुगत ले।

१२. सत्याग्रही अपने या अपने ही वर्ग (क्लास) के कैदियोंके लिए

जेल-व्यवहारमें सुधार होने या सुविधा मिलनेके वास्ते सत्याग्रह न करे। हां, वह अन्याय-व्यवहार केवल उसके या उसके वर्गके कैदियोंके साथ ही किया जाता हो तो बात दूसरी है। पर सारी जेल-व्यवस्थामें जो सुधार करानेकी आवश्यकता हो सिर्फ उसीके लिए उचित कारण और परिस्थिति मिलनेपर वह सत्याग्रहका सहारा ले सकता है।

१३. सत्याग्रहीका इस प्रकार व्यवहार करना जिससे जेल-व्यवस्था ठीक तौरसे चलती रहे सहयोग सत्याग्रहके सिद्धांतका विरोधी नहीं है, इसलिए इस तरहकी सारी सहायता जेल-अधिकारियोंको देना सत्याग्रहीका धर्म है। पर सत्याग्रही जेलकी वार्डरी या पहरेदारी आदि स्वीकार नहीं कर सकता।

१४. छूटके दिन बढ़ानेके लिए सत्याग्रही लालसा न दिखाये।

१५. स्वराज्यके लिए किये जाने वाले सत्याग्रहका उद्देश्य सारी राज्य-व्यवस्थाको जड़से ही बदल देना है। इसलिए सत्याग्रहीको जेलमें कोई ऐसा आंदोलन न उठाना चाहिए जिससे जेल-प्रबंधका सुधार एक स्वतंत्र लड़ाई बन जाय, किंतु अक्षम्य अमानुषी व्यवहार या नियमके खिलाफ ही उसका अवसर आनेपर लड़ना चाहिए।

१३

सत्याग्रहीकी नियमावली

कुछ पुनरुक्ति दोष होते हुए भी २३ फरवरी १९३०के 'नव-जीवन'में दी हुई 'सत्याग्रहीकी नियमावली' यहां देनेसे इस खंडकी उचित पूर्त्ति होगी। इसमें इस खंडका सुंदर उपसंहार भी होता है—

१. सत्याग्रहका अर्थ है सत्यका आग्रह। यह आग्रह रखनेसे मनुष्य-को अतुल बल मिलता है। इस बलको हम सत्याग्रहका नाम देते हैं।

२. सत्यका आग्रह सच्चा हो तो उसे माता-पिता, स्त्री-पुत्रादिके मुका-बले, राजा-प्रजाके मुकाबले, और अंतको संपूर्ण जगतके मुकाबले काममें लाना पड़ता है।

३. ऐसा व्यापक आग्रह करते समय स्वजन-परजन, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुषका भेद नहीं रहता। अतः किसीके विरुद्ध शरीर - बलका उपयोग नहीं किया जा सकता। तो जो बल बचा वह अहिंसाका—प्रेमका बल ही होसकता है। इस बलका दूसरा नाम आत्माका बल है।

४. प्रेमका बल दूसरेको नहीं जलाता, खुद ही जलता है। इसलिए सत्याग्रहीमें मौततकका कष्ट हँसते-हँसते सह लेनेकी शक्ति होनी चाहिए।

५. इससे यह स्पष्ट है कि सत्याग्रही प्रतिपक्षीका आत्यंतिक विरोध करते हुए भी मन, वचन या कायासे विपक्षके किसी भी व्यक्ति-का अहित न चाहे और न करे। इस विचार-श्रेणीसे ही असहयोग, सविनय अवज्ञा इत्यादि उत्पन्न हुए है।

६. सत्याग्रहकी इस उत्पत्तिको जो याद रक्खेगा वह नीचे लिखे नियमोंको आसानीसे समझ सकेगा —

(अ) सत्याग्रही किसीपर क्रोध न करेगा।

(आ) वह विरोधीका क्रोध सहन करेगा।

(इ) क्रोध सहन करते हुए वह विरोधीकी मार सह लेगा पर उसे कदापि न मारेगा, इसी प्रकार गुस्सेमें दिये गये उचित या अनुचित आज्ञाको भी मारके या और किसी डरसे, न मानेगा।

(ई) सिपाहीके पकड़ने आनेपर वह खुशीसे गिरफ्तार हो जायगा। अपनी माल-जायदाद जब्त करने आनेपर वह आसानीसे दे देगा।

(उ) दूसरेकी संपत्ति अपने संरक्षणमे होगी तो उसका कब्जा वह मरते दमतक न छोड़ेगा, फिर भी कब्जा करने आनेवालेको मारेगा नही।

(ऊ) न मारनेके मानी गाली न देना भी है।

(ए) इस दृष्टिसे सत्याग्रही विरोधीका अपमान न करेगा।

आजकाल प्रचलित कितने ही नारे हिंसक हैं और सत्याग्रहीके लिए सर्वथा त्याज्य हैं।

(ऐ) सत्याग्रही ब्रिटेनके झंडेको सलामी नही देगा, पर उसका अपमान भी न करेगा। अधिकारीका या किसी अंग्रेजका वह अपमान न करेगा।

(ओ) आंदोलनके सिलसिलेमे किसी अंग्रेज या किसी सरकारी कर्मचारीका कोई अपमान करे या उसपर हमला करे तो सत्याग्रही अपनी जान जोखिममें डालकर उसकी रक्षा करेगा।

जेल-संबंधी

(औ) कैद हो जानेपर सत्याग्रही जेलके उन तमाम नियमोंका पालन करेगा जो आत्म-सम्मानके विरुद्ध न हों, और अधिकारियोंके साथ शिष्टता-से व्यवहार करेगा। मसलन, वह अधिकारियोंको साधारणतः नमस्कार करेगा, पर वे नाक रगड़नेको कहेंगे तो न रगड़ेगा। वह 'सरकारकी जय' न बोलेगा। जेलका साफ-सुथरा भोजन, जिसमें कोई धार्मिक आपत्ति न हो, वह ले लेगा, सड़ा हुआ, कूड़ा-मिट्टी मिला हुआ, मैले बर्तनमें परोसा हुआ या अपमानपूर्वक दिया हुआ खाना वह न लेगा।

(अं) सत्याग्रही खूनी कैदी और अपनेमें भेद न मानेगा। इसलिए उससे अपनेको ऊंचा मान या बतलाकर अपने लिए विशेष सुविधा न मांगेगा, पर शरीर या आत्माकी आवश्यकताकी दृष्टिसे जरूरी सुभीता मांगनेका उसे अधिकार है।

(अः) जिनमें आत्मसम्मानका भंग न होता हो वैसी रियायतें न पाने पर सत्याग्रही उपवास आदि न करे।

दल-संबंधी

(क) अपनी टुकड़ीके सरदारके जारी किये हुए संपूर्ण आदेशोंका पालन सत्याग्रही खुशीसे करेगा, चाहे वे उसे पसंद हों या न हों।

(ख) आदेश अपमानजनक हो, द्वेष-प्रेरित या मूर्खतासे भरा मालूम होता हो, तो भी उसका पालन करके फिर ऊपरवाले अफसरसे शिकायत करे। दलमें शामिल होनेसे पहले शामिल होनेकी शर्तोंपर विचार करनेका अधिकार सत्याग्रहीको है। पर शामिल हो जानेके बाद दलके कड़े-नरम नियमों और उनके नियमनका पालन धर्म हो जाता है। दलके समूचे व्यवहारमें अनीति दिखाई दे तो सत्याग्रही उससे अलग होसकता है, पर उसमें रहकर नियमभंग करनेका अधिकार उसे नहीं है।

(ग) किसी सत्याग्रहीको किसीसे अपने आश्रितोंके भरण-पोषणकी आशा न रखनी चाहिए। किसीके लिए कोई प्रबंध हो जाय तो उसे अन-पेक्षित बात समझे। सत्याग्रहीको अपनेको और अपने आश्रितोंको ईश्वरकी शरणमें ही छोड़ना चाहिए। शरीर-बलके युद्धमें भी, जहां लाखों लोग लड़ते हैं, किसीका भरोसा नही रक्खा जाता। सत्याग्रही युद्धके बारेमे तो कहना ही क्या? सार्वभौम अनुभव यह है कि ऐसोंको ईश्वरने भूखों नहों मरने दिया।

सांप्रदायिक झगड़ोंमें

(घ) सत्याग्रही सांप्रदायिक लड़ाई-झगड़ोंका कारण जान-बूझकर हर्गिज न बने।

(ङ) यदि साम्प्रदायिक झगड़ा होजाय तो सत्याग्रही किसीकी तरफ-दारी न करे। जिधर न्याय देखे उसकी मदद करे। वह खुद हिंदू होगा तो मुसलमान इत्यादि दूसरे मजहबवालोंके प्रति उदारता दिखायेगा, और हिंदुओंके आक्रमणोंसे उन्हें बचाते हुए अपने प्राणतक दे देगा। यदि मुसलमान आदिका हिंदूपर हमला हो तो हिंदूकी रक्षा करनेमे वह अपनी जान दे देगा, पर उनपर किये जानेवाले जवाबी हमलेमें हर्गिज शरीक न होगा।

(च) जिन प्रसगोंसे साप्रदायिक झगड़े उत्पन्न हो सकते हैं उनसे वह अपनेको भरसक अलग रखेगा।

(छ) सत्याग्रहीको यदि जुलूस निकालना पड़े तो वह ऐसा कोई काम न करेगा जिससे किसी भी सप्रदायका दिल दुखे। दूसरोंके निकाले हुए ऐसे जुलूसमें भी वह शरीक न होगा जिससे किसी धर्म—संप्रदाय-वालोंका दिल दुखता हो।

१४

सत्याग्रहीकी योग्यता

२६ मार्च १९३९ के 'हरिजन-बंधु'में गांधीजीने एक लेखमे सत्याग्रहीके लिए कम-से-कम निम्नलिखित योग्यताएं आवश्यक मानी है :–

१. उसे ईश्वरपर ज्वलंत विश्वास होना चाहिए; क्योंकि वही एकमात्र अटूट आधार है।

२. उसकी सत्य और अहिंसामें धर्मभावसे श्रद्धा होनी चाहिए और इसलिए मनुष्य-स्वभावके अंदर बसनेवाली भलाईमें उसका विश्वास होना चाहिए। इस भलाईको सत्य और प्रेमके द्वारा स्वयं दुःख सहकर जाग्रत करनेकी वह सदा आशा रक्खे।

३. वह शुद्ध जीवन बितानेवाला हो तथा अपने लक्ष्यके लिए अपना जान-माल कुरबान करनेको हमेशा तैयार रहे।

४. वह आदतन खादीधारी और साथ ही कातनेवाला हो। भारतवर्षके लिए यह बहुत ही जरूरी चीज है।

५. वह निर्व्यसन हो और सभी प्रकारकी नशीली वस्तुओंसे दूर रहे, जिससे उसकी बुद्धि सदा निर्मल और मन निश्चल रहे।

६. समय-समयपर बनाये गये अनुशासनके नियमोंको वह प्रसन्नतापूर्वक और मनसे पाले।

७. वह जेल-नियमोंका पालन करे, सिर्फ उन नियमोंको छोड़कर जो उसके मानभंगके लिए ही खास तौरसे गढ़े गये हों।

१५

सामुदायिक सत्याग्रह

कहीं भी सामुदायिक सत्याग्रह करनेके लिए नीचे लिखी अनुकूलताएं आवश्यक हैं। इनके अभावमें सामुदायिक सत्याग्रह शुरू करनेमें मार-काट मच जानेसे, आपसमें और जिसके मुकाबले सत्याग्रह शुरू किया गया हो

उससे बैर-विरोध बढ़नेका डर रहता है। और, संभव है आखिरमें बलप्रयोग या दमनके कारण जनता भयभीत हो जाय तथा और ज्यादा दब जाय।

१. सत्याग्रह शुरू करनेकी इच्छा रखनेवाले नेताओंमें परस्पर संपूर्ण विश्वास और विचारोंकी एकता होनी चाहिए। यदि एक-दूसरेकी ईमानदारीपर शंका या नेताकी विचारधारापर अविश्वास या अर्द्धविश्वास हो तो इसे सामुदायिक सत्याग्रहके लिए प्रतिकूल परिस्थिति समझना चाहिए।

२. यदि सत्याग्रह चलानेकी इच्छा रखनेवाले नेताओंमें भिन्न-भिन्न राजनीतिक विचारोंके लोग हों तो सत्याग्रहके तात्कालिक उद्देश्यके बारेमें उन्हें स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए, और सत्याग्रहके बीचमें भिन्न-भिन्न प्रकारके राजनीतिक विचारोंके वाद-विवाद या उस दृष्टिसे की जानेवाली आलोचनाओंको बंद करनेमें सबको एकमत होना चाहिए।

३. सत्याग्रही नेताओंका जनतापर इतना काबू होना चाहिए कि लोग उनकी दी हुई हिदायतोंपर खुशीसे और लगनसे अमल करें। उनकी मना की हुई बात या काम कभी न करें।

४. जनताका नेताओंपर इतना विश्वास होना चाहिए कि विरोधियोंकी ओरसे उनके विषयमें चाहे जैसी बातें कही-फैलायी जायं, पर उनसे अपनेमें बुद्धिभेद न होने दे।

५. स्वराज्य अथवा उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रणाली प्राप्त करनेके उद्देश्यसे सत्याग्रह करना हो तो सत्याग्रह आरंभ करनेके पहले ही महत्त्व-वाले सांप्रदायिक प्रश्नोंके बारेमें समझौता होजाना चाहिए। ऐसी परि-स्थिति न रहने देनी चाहिए कि ऐसे सवाल खड़े करके विरोधी पक्ष जनतामें फूट डाल सके।

६. "सत्याग्रहीकी योग्यता" वाले प्रकरणमें बतायी हुई शर्तोंमें विश्वास होते हुए भी जो उनका पालन नहीं कर सकते उन्हें सत्याग्रहके तीव्र अर्थात् जोखिमवाले कार्यक्रममें शरीक न होना चाहिए, पर बाहर रहकर वे जनताके विधायक कार्यक्रमको भली-भांति चलाते रहें, और उसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लें। आम जनताको उन्हें पूरा-पूरा सह-योग देना चाहिए।

७. सत्य और अहिसाद्वारा स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए सांप्रदायिक एकता, अस्पृश्यता-निवारण, व्यापक खादी-प्रचार और मद्यनिपधके विषय-में यदि जनतामें प्रबल बहुमत तथा सत्याग्रहमें दिलचस्पी रखनेवालोंमें संपूर्ण एकमत न हो तो सामुदायिक सत्याग्रहके लिए अनुकूल परिस्थिति नहीं मानी जा सकती। तबतक सच्चा स्वराज्य भी असंभव ही है।

८. सत्याग्रहकी किसी भी लड़ाईके पूर्व और उसके दौरानमे भी विरोधी व्यवस्था या अधिकारीके विषयमें जनतामें तिरस्कारका भाव न होना चाहिए, और ऐसा भाव पैदा करनेवाली भाषाका व्यवहार न करना चाहिए। यदि प्रचारकोंको वैसा करनेसे रोका न जा सकता हो तो यह सत्याग्रहके लिए अनुकूल परिस्थिति नहीं मानी जा सकती।

९. गुप्त प्रबंध किये बिना सत्याग्रहका जारी रहना शंकास्पद हो तो यह अनुकूल स्थिति नही है।

१०. जबतक अनुकूल परिस्थिति न हो तबतक चतुर्विध रचनात्मक कार्यक्रम तथा दूसरी लोकोपयोगी सेवा करते रहना ही स्वराज्यकी साधना है। बहुत वर्षोतक ऐसा करना पड़े तो भी इसमें हानि नहीं है। इसे प्रगति ही कहेंगे, पीछे हटना नहीं।

खंड ५ :: स्वराज्य

१

रामराज्य

१. रामराज्य स्वराज्यका आदर्श है। इसका अर्थ है धर्मका राज्य, अथवा न्याय और प्रेमका राज्य, अथवा अहिंसक स्वराज्य या जनताका स्वराज्य।

२. जनताके स्वराज्यका अर्थ है––प्रत्येक व्यक्तिके स्वराज्यसे उत्पन्न जनसत्तात्मक राज्य। ऐसा राज्य केवल प्रत्येक व्यक्तिके नागरिकताके नाते उसका जो धर्म है उसका पालन करनेसे ही उत्पन्न होता है।

३.(क) इस स्वराज्यमें किसीको अपने अधिकारका ख्यालतक नहीं होता। अधिकार आवश्यक होनेपर खुद-ब-खुद दौड़ा चला आता है। इसमें लोगोंके अपने हक जाननेकी जरूरत नहीं होती, पर अपना धर्म जानना और पालना आवश्यक होता है। कारण यह कि कोई कर्तव्य ऐसा नहीं है जिसके अंतमें कोई हक न हो। और सच्चा हक अथवा अधिकार तो केवल पाले हुए धर्ममें से ही पैदा होते है।

(ख) जो सेवाधर्म पालता है उसीको नागरिकताका असली अधिकार मिलता है, और वही उसे पचा सकता है।

(ग) वैसे ही, झूठ न बोलनेका (अर्थात् सत्यका) और मारपीट न करनेका (अर्थात् अहिंसाका) धर्म पालन करनेसे जो प्रतिष्ठा मिलती है वह उसे बहुतेरे अधिकार दिला देती है और ऐसा मनुष्य अपने अधिकारका भी सेवाके लिए उपयोग करता है, स्वार्थके लिए कदापि नहीं।

४. रामराज्यमें एक ओर अथाह संपत्ति और दूसरी ओर करुणाजनक फाकेकशी नहीं हो सकती; उसमें कोई भूखा मरनेवाला नहीं हो सकता; उस राज्यका आधार पशुबल न होगा, बल्कि, लोगोंके प्रेम और समझ-बूझकर और बिना डरे दिये हुए सहयोगपर वह अवलंबित रहेगा।

५. उसमें बहुमत या बड़ी जाति अल्पमत या छोटी जातिको नहीं दबाती; बल्कि अल्पमत भी बहुमत जैसी ही स्वतंत्रता भोगेगा और बड़ी जाति छोटी जातियोंके हितकी रक्षा करना अपना फर्ज समझेगी।

६. वह करोड़ोंका और करोड़ोंके सुखके लिए चलनेवाला राज्य होता है। उसके विधानमें जिसे मुख्य अधिकारीकी जगह मिली होगी वह चाहे राजा कहलाता हो, अध्यक्ष कहलाता हो या और कुछ कहलाता हो, वह प्रजाका सच्चा सेवक होनेके नाते ही उस पदपर होगा। प्रजाके प्रेमसे वहां टिकेगा और उसके कल्याणके लिए ही प्रयत्न करता रहेगा। वह जनताके धनपर गुलछर्रे नहीं उड़ायेगा, और अधिकार-बलसे लोगोंको सतायेगा नहीं किंतु राजा या तत्सदृश कहलाते हुए भी वह फकीरके मानिंद रहेगा।

७. राम-राज्यका अर्थ है कम-से-कम राज्य। उसमें लोग अपना बहुत कुछ व्यवहार परस्पर मिलकर अपने आप चलायेंगे। कानून गढ़-गढ़-कर अधिकारियोंके द्वारा दंडके भयसे उनका पालन कराना उसमें लगभग नहीं होगा। उसमें सुधार करनेके लिए जनता धारा-सभा या अधिकारियोंकी राह देखती बैठी न रहेगी। बल्कि लोगोंके चलाये सुधारोंके अनुकूल पड़ने-वाले प्रकारसे कानूनमें सुधार करनेके लिए व्यवस्थापिका सभाएं और व्यवस्था करनेके लिए अधिकारी यत्न करेंगे।

८. उसमें खेतीका धंधा बढ़तीपर होगा और दूसरे सब धंधे उसके सहारे टिकेंगे। अन्न और वस्त्रके विषयमें लोग स्वाधीन होंगे और गाय-बैलोंकी भी समृद्ध दशा होनेसे आदर्श गो-रक्षाकी व्यवस्था होगी।

९. उसमें सब धर्म, सब वर्ण और सब वर्ग समान भावसे मिलजुल कर रहेंगे और धार्मिक झगड़े या क्षुद्र स्पर्धा, अथवा विरोधी-स्वार्थ सरीखी चीज ही न होगी।

१०. उस राज्यमें स्त्रीका पद पुरुषके समान ही होना चाहिए।

११ उसमें कोई मनुष्य संपत्ति या आलस्यके कारण निरुद्यमी न होगा; कोई मेहनत करते हुए भी भूखों मरनेवाला न होगा; किसीको उद्यमके अभावमें मजबूरन आलसी न बने रहना पड़ेगा।

१२. उसमें आंतरिक कलह न होगा, और न विदेशोंके साथ ही

लड़ाई होगी। उसमें दूसरे देशोंको लूटनेकी, जीतनेकी या उनके व्यापार-धंधे अथवा नीतिको नाश करनेवाली राजनीति अस्वीकृत होनी चाहिए। वह दूसरे राष्ट्रोंके साथ मित्र-भावसे रहेगा।

१३. अतः रामराज्यमें फौजी खर्च कम-से-कम होना चाहिए।

१४. उसमें लोग केवल लिख-पढ़ सकनेवाले ही न होंगे बल्कि सच्चे अर्थमें शिक्षा पाये हुए होंगे; अर्थात् उन्हें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए जो मुक्ति देनेवाली और मुक्तिमे स्थिर रखनेवाली हो।

१५. यह एक ही देश या जनताके लिए नहीं बल्कि सारी दुनियाके उत्तम राज्यका आदर्श है। यदि एक जगह भी वह सिद्ध हो जाय तो फिर उसकी छूत सारी दुनियामें फैल जानी चाहिए।

१६. यह स्थिति आनेपर भिन्न-भिन्न राज्योंमें झगड़ेका कारण ही न रहेगा। अर्थात्, युद्ध जैसी चीज ही न रह सकेगी। सारे मतभेद, विरोध, झगड़े अहिंसक मार्गसे ही निपटा करेंगे।

२

व्यवस्था-सुधार और विधान-सुधार

१. व्यवस्थाके सुधार और विधानके सुधारका सवाल एक ही नहीं है।

२. व्यवस्थाके सुधारका अर्थ है, सत्ताका उपयोग करनेवाले अधिकारियोंकी प्रजाके प्रति व्यवहार करनेकी सारी मनोवृत्तिमें सुधार होना।

३. विधानके सुधारमें कानून बनानेके लिए और राज्यके भिन्न-भिन्न विभागोंका पर निगरानी रखने तथा उसकी नीति निश्चित करनेके लिए कितने लोगोंके इकट्ठा होनेकी जरूरत है, उनकी नियुक्ति किस तरह होनी चाहिए, कहां बैठकर किस तरह उन्हें बहस-बिचार करना चाहिए, आदि बातोंका विचार किया जाता है।

४. कुछ दिनोंसे शासन-विधानके प्रश्नको आवश्यकतासे अधिक महत्त्व दिया जारहा है, इससे असली विषयको भूलकर हम राज्यके बाहरी रूप-रंगके विचारमें उलझ जाते हैं।

५. शासन-विधानकी बारीकियों तथा उसकी भिन्न-भिन्न योजनाओंके सूक्ष्म भेदों और उनका महत्त्व समझनेकी आशा देशके करोड़ों लोगोंसे नहीं रखी जा सकती। इसलिए वे इन विषयोंमें इतनी दिलचस्पी नहीं ले सकते कि उनपर स्वयं विचार करें।

६. देशका शासन-विधान राजसत्तात्मक कहलाता है या प्रजासत्तात्मक, साम्राज्यका अंग कहलाता है या स्वतंत्र, छः हजार प्रतिनिधियोंद्वारा चलाया जाता है या छः सौ प्रतिनिधियोंद्वारा, उसमें हिंदू अधिक हैं या मुसलमान—देशके करोड़ों अपढ़ ग्रामवासियोंको इन विषयोंका महत्त्व समझाना कठिन है और इन बातोंकी बहसमें उन्हें घसीटनेमें बहुत लाभ भी नहीं जान पड़ता।

७. उनके लिए तो महत्त्वका प्रश्न यह है कि उनके गांवका मुखिया या पटवारी उनके पास हुकूमतका रोब दिखाने, धौंस जमाने और घूस मांगने आता है या उनका मित्र, सलाहकार और संकटका साथी बनकर रहता है; वह अपने आपको लोगोंको चाहे जैसे हांकनेके लिए नियुक्त छोटा या बड़ा अफसर समझता है या जनताका सेवक मानता है।

८. इसके सिवा जनताके लिए महत्त्वका प्रश्न यह है कि उसके सिरपर करका बोझ भारी है या हलका, यह कर उससे किस प्रकार, किस रूपमें और किस वक्त वसूल किया जाता है और इन करोंका उपयोग किन कामोंमें होता है?

९. ऐसे सुधार केवल किसी विशेष प्रकारका विधान बना देनेसे नहीं हो जाते; बल्कि जिनपर उसे अमलमें लानेकी जिम्मेदारी आती है उनके अंदर पोषित धर्मबुद्धि और अपने मतको प्रभावकर बनानेकेलिए जनतामें जो पुरुषार्थ करनेकी शक्ति होती हैं उससे होता है। शासन-विधानका बाह्य रूप कैसा ही हो, यदि अधिकारी धर्मबुद्धिवाला प्रजा-सेवक और प्रजा पुरुषार्थी हो तो राज्यकी ओरसे वहां अधिक समयतक अन्याय, जोर-जुल्म आदि नहीं हो सकते।

३

सांप्रदायिक एकता

१. जबतक देशके भिन्न-भिन्न संप्रदायोंमे एकता-मेल नहीं कराया जा सकता तबतक स्वराज्य प्राप्त करना और उसे कायम रखना असंभव है।

२. इस एकताकी स्थापनाके लिए सबमें आजादीसे रोटी-बेटी-व्यवहार होना ही चाहिए, अथवा उनके भिन्न-भिन्न धर्मो और संस्कृतियोंके भेद मिट जाने चाहिए और किसी एक ही धर्मकी अथवा किसी भी धर्मका आधार न रखनेवाली संस्कृति निर्माण होनी चाहिए, यह आवश्यक नहीं है। इष्ट भी नही है। प्रत्येक जातिको अपनी-अपनी विशेषता कायम रखते हुए एकता करनी चाहिए।

३. परंतु इस एकताकी स्थापनाके लिए बड़े संप्रदायोंका छोटे संप्रदायोंको अभय देना जरूरी है। बड़े संप्रदायोंको चाहिए कि छोटे संप्रदायोंको इस बातका इतमीनान दिला दें कि बड़े संप्रदायोंका रुख और विरद ऐसा होगा कि अगर न्याय और सार्वजनिक हितके विरुद्ध न हो तो उनके धर्म, भाषा, साहित्य, मजहबी कानून, रस्म-रिवाज, शिक्षा, अर्थ-प्राप्तिके अवसर आदि विषयोंमे उन्हें हानि सहन न करनी पड़ेगी।

४. अगर स्थिति यह हो कि बड़े संप्रदायको छोटे संप्रदायसे डर लगता हो तो वह इस बातकी सूचक है कि या तो (१) बड़े संप्रदायके जीवनमें किसी गहरी बुराईने घर कर लिया है और छोटे संप्रदायमें पशुबलका मद उत्पन्न हुआ है (यह पशुबल राजसत्ताकी बदौलत हो या स्वतंत्र हो), अथवा (२) बड़े संप्रदायके हाथों कोई ऐसा अन्याय होता आ रहा है जिसके कारण छोटे संप्रदायमें निराशासे उत्पन्न होनेवाला मर-मिटनेका भाव पैदा होगया है। दोनोंका उपाय एक ही है—बड़ा संप्रदाय सत्याग्रहके सिद्धांतोंका अपने जीवनमें आचरण करे। वह अपने अन्याय सत्याग्रही बनकर, चाहे जो कीमत चुकाकर भी दूर करे और छोटे संप्रदायके पशु-बलको अपनी कायरताको निकाल बाहर करके सत्याग्रहके द्वारा जीते।

५. जब दो संप्रदायोंमें लड़ाई हो जाय तो सरकार या कानूनकी सहायता लेना जनताको निर्वीर्य बना देनेवाली बात है। भले ही दोनों जातियां एक-दूसरेका खून बहा लें और जब रक्तपातसे जी भर जाय तब शांति धारण करें, पर एक-दूसरेके खिलाफ फरियाद करने न दौड़ें। यह आदर्श स्थिति तो नहीं है, पर विदेशी सरकार या भाड़ेके लोगोंकी मददसे 'शांति' की रक्षा करानेसे तो यह अवस्था कम दुःखद है।

६. जबतक छोटे संप्रदायोंके मनमें बड़े संप्रदायोंकी नीयतके बारेमें शंका है तबतक बड़े संप्रदायको चाहिए कि वह छोटे संप्रदायको जमानत दे। यही उसे वशमें करनेका अच्छे-से-अच्छा उपाय है। जमानत देनेके मानी हैं जिन शर्तोंको स्वीकार कर लेनेसे उन्हें निर्भयता प्रतीत हो उन शर्तोंको अधिक-से-अधिक जितना स्वीकार करना संभव हो उतना कर लिया जाय।

७. अवश्य ही यह नियम वहीं लग हो सकता है जहां छोटा संप्रदाय बड़े संप्रदायकी अपेक्षा प्रगतिमें पीछे हो। जहां छोटा संप्रदाय ही अधिक समृद्ध और बलवान हो वहां छोटा संप्रदाय बड़े संप्रदायसे अधिक या विशेष अधिकार पानेकी मांग नहीं कर सकता।

८. छोटे संप्रदायके पास यदि अधिक अधिकार, धन, विद्या, अनुभव आदिका बल हो और इस कारण बड़े संप्रदायको उससे डर लगता रहता हो तो उसका धर्म है कि शुद्ध भावसे बड़े संप्रदायका हित करनेमें अपनी शक्तिका उपयोग करे। सब प्रकारकी शक्तियां तभी पोषण-योग्य समझी जा सकती हैं जब उनका उपयोग दूसरेके कल्याणके लिए हो। दुरुपयोग होनेसे वे विनाशके योग्य बनती हैं और चार दिन आगे या पीछे उनका विनाश होकर ही रहेगा।

९. सार्वजनिक संस्थाओंमें कर्मचारियों, पदाधिकारियों आदिकी नियुक्तिमें सांप्रदायिक दृष्टिसे काम लेना उन विभागोंकी कार्य-कुशलता को नष्ट करनेका रास्ता है। इसके लिए तो जात-पांत, धर्म इत्यादि किसी बातका विचार न करके, जो काम करता है उसकी योग्यता देखना ही नियुक्तिका सिद्धांत होना चाहिए।

१०. ये सिद्धांत जिस प्रकार हिंदू-मुसलमान-सिख आदि छोटे-बड़े संप्रदायोंपर घटित होते हैं उसी प्रकार अमीर-गरीब, जमींदार-किसान, मालिक-नौकर, ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर इत्यादि छोटे-बड़े वर्गोंके आपसके संबंधोंपर भी घटित होते हैं।

४

अंग्रेजोंके साथ संबंध

१. ब्रिटिश राज्यके साथ हिंदुस्तानका संबंध किस प्रकारका होना चाहिए इसके निश्चयका अधिकार हिंदुस्तानकी जनताको है। जबतक यह अधिकार न हो स्वराज्य मिल गया यह नहीं कह सकते।

२. इस अधिकार-सहित ब्रिटिश साम्राज्यके साथ हिंदुस्तानका संबंध बना रहे तो इससे पूर्ण स्वराज्यमें न्यूनता नहीं मानी जायगी; क्योंकि उस स्थितिमें हिंदुस्तान ब्रिटिश साम्राज्यके साथ समान अधिकार भोगता रहेगा, अर्थात् अपनी विशालता और महत्ताके अनुपातमें वह साम्राज्यके दूसरे अंगोंपर अपना प्रभाव डालता रहेगा।

३. हिंदुस्तान और ब्रिटिश साम्राज्यके बीच अगर ऐसा संबंध हो जाय और उसमें हिंदुस्तानकी नीति सत्य और अहिंसाकी पोषक रहे, तो ब्रिटिश साम्राज्य आजकी भांति जगतके लिए भयकी वस्तु न होगा बल्कि सब राष्ट्रोंको अभय देनेवाला हो सकता है।

४ पर यह स्थिति आनेके पहले हिंदुस्तानको लंबा रास्ता तय करना होगा। उसे अपनी शक्ति और संस्कृतिको पहचानकर, उसके प्रति वफादार रहकर, उस विषयकी अपनी साधना पूरी करनी होगी। जबतक वह निर्बलता और कायरताका सहारा लेता है तबतक यह असंभव है।

५. ब्रिटिश साम्राज्य आसुरी व्यवस्था है और उसका नाश होना ही चाहिए, यह ठीक है। पर ब्रिटिश साम्राज्य और ब्रिटिश जाति एक चीज नहीं है। ब्रिटिश जातिमें जगतकी अथवा यूरोपकी दूसरी जातियोंसे

अधिक दोष या कम गुण नही है। इस जातिमें अनेक आदरणीय और अनुकरणीय सद्गुण हैं और यदि आजके विषम संबंधके कारण हम उनकी कद्र न कर सकें तो इसे दुर्भाग्य ही समझना होगा।

६. स्वराज्य-भारतमें रहनेवाले अंग्रेज दूसरी अल्पसंख्यक जातियों समुदायोंकी तरह रह सकते हैं। वे हिंदुस्तानकी दूसरी जातियोंकी भांति हिदुस्तानी बनकर देशकी सेवामें अपना भाग अर्पण कर सकते है। और पिछले प्रकरणमें बताये हुए सिद्धांतोके अनुसार देशकी दूसरी जातियोंके साथ उनका संबंध रहेगा। पर यदि वे परदेशी बनकर ही रहना पसंद करें तो हिंदुस्तानके हितके अनुकूल शर्तोंपर ही वे हिदुस्तानकी नौकरी कर सकते है।

५

देशी राज्य

१. देशी राज्य आज अपने बलपर नही चल रहे है बल्कि ब्रिटिश राज्यके बलपर टिके हुए है। उन्हें यह डर लगा रहता है कि ब्रिटिश राज्य न रहे तो हमारी हस्ती भी न रहेगी। इसलिए वे ब्रिटिश राज्यको कायम रखने और उसके प्रति ब्रिटिश भारतकी प्रजासे भी अधिक वफादारी दिखानेकी कोशिश करते हैं।

२. पर यह अधिक वफादारी अधिक गुलाम-दशाका चिन्ह है। इसके मूलमें शुद्ध भक्ति नहीं बल्कि भ्रम-भरा और गंदा स्वार्थ है।

३. इसलिए देशी राज्योंकी प्रजाकी दशा दुहरी गुलामीकी है। जैसे गलामीकी प्रथामें गुलामोंका मेठ मालिकसे भी अधिक कड़ाई करता है वसे ही हमारे देशी नरेश अपनी प्रजाके प्रति अधिक कठोरता दिखाते हैं तो इसमें कोई नयापन नहीं।

४. इसका उपाय यही है कि ब्रिटिश भारत पहले स्वराज्य प्राप्त कर ले। जबतक ब्रिटिश भारतकी जनता स्वतंत्र नहीं होती तबतक देशी राज्यकी प्रजाके संकट दूर करनेका सामर्थ्य उसमें नहीं आयेगा। अपने

पुरुषार्थसे स्वतंत्र होनेसे ब्रिटिश भारतकी जनतामें जो शक्ति पैदा होगी वह देशी राज्योंकी आंखें खोल देगी। उस समय देशी राजाओंकी समझमें आयेगा कि ब्रिटिश बंदूकोंके बलपर अपनी प्रजाको दबाये रखकर थोड़ा अधिकार भोगने या मौज उड़ानेकी अपेक्षा निष्ठापूर्वक प्रजाकी सेवा करने, उसके सुख-दुःख और गरीबीमें शरीक होकर प्रेमसे उसके हृदय पर अपनी सत्ता जमानेमें उनकी अपनी भी अधिक भलाई है।

५. जिन भारतीय नरेशोंकी आंखें इस तरह खुल जायंगी वे खुद ही अपने राज्योंमें सुधार करने लग जायेंगे। जो इतने जड़, नासमझ होंगे कि उस समय भी न चेतेंगे उनके राज्य नहीं टिकनेके--इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं। पर ऐसे जड़मति राजा भी तब आज-जैसी मनमानी तो हर्गिज न कर सकेंगे। क्योंकि स्वतंत्र हुए ब्रिटिश भारत तथा सुधरे हुए देशी राज्योंका एकत्र लोकमत इतना प्रबल होगा कि दुष्टोंके लिए भी अपनी दुष्टताको लगाम लगानेके सिवा दूसरा चारा न होगा।

६. पुरुषार्थी और स्वतंत्र प्रजाके शिक्षित लोकमतमें कितना अधिक बल होता है, सामाजिक व्यवहारमें हमें इसका अनुभव होनेपर भी आज हम इसे भूल गये हैं। पशुबलपर टिकी हुई सत्ताएं भी तभी तक अपने पशुबलका सहारा ले सकती हैं जबतक लोकमत प्रबल न हो। जहां लोकमतका जबर्दस्त प्रवाह है वहां बड़ीसे बड़ी सल्तनतका भी झुके बिना काम नहीं चलता।

७. यह लोकमत कितना बलवान है इसका निदर्शक और कभी हार न देखनेवाला शस्त्र एक ही है, और वह सत्याग्रह है। अपने मत के लिए मर मिटनेवाली जनताके सामने बड़े-बड़े मुकुटधारियोंका भी झुके बिना चलता नहीं।

६

देशकी रक्षा

१. स्वराज्यमें भारतके पास देशकी रक्षा करनेका बल न होगा यह खयाल गलत है।

२. अहिंसा-धर्मको समझकर उसका ठीक-ठीक पालन करनेवाली जनताको देश-रक्षाके साधन-स्वरूप तोप, बंदूक, जंगी बेड़े आदिकी जरूरत ही न होगी। पर आज तो यह स्थिति कल्पनामें ही विद्यमान मानी जा सकती है।

३. फिर भी स्वातंत्र्यप्राप्त और परराष्ट्रोंके साथ मेल-जोलसे रहने तथा उनके निर्वाहके साधनोंपर आक्रमण न करनेकी नीति बरतनेवाले हिंदुस्तानको आजके जैसे और आजके जितने सैनिक साधनों और सेनाकी जरूरत न होगी।

४. स्वराज्यमें मर्यादा और बंधनके अंदर हर योग्य आदमीको हथियार रखनेकी इजाजत रहेगी। दूसरोंके आक्रमणके खतरेमें ही इसका (स्वराज्यका) कारबार नहीं चलेगा। अतः वह इतनी सेना और साधन तो तैयार रखेगा ही कि अकल्पित आक्रमण या वैसी परिस्थितिमें हुए पहले हमलेको रोक सके और पीछे आवश्यक हो ही जाय तो देशको तेजीके साथ तैयार कर लेनेकी आशा रक्खेगा।

५. अगर हम जनताको इस तरह शिक्षा देनेका प्रबंध कर और उसमें सफल हो सकें कि देशके बहुतेरे काम-काज वह कानून और अधिकारियोंकी राह देखे बिना स्वेच्छासे सावधान रहकर करलेती हो, तो उस स्थितिमें देशमें ऐसे स्वयं-सेवकोंके मंडल होंगे जिनके जीवनका मुख्य कार्य ही होगा जनताकी सेवा करना और उसके लिए अपना बलिदान कर देना। ये ऐसे दल न होंगे जो केवल लड़ाई लड़ना ही जानते हों बल्कि प्रजाको तालीम देनेवाले और उसकी व्यवस्था, व्यवहार और सुख-सुविधाकी सम्हाल रखनेवाले दल होंगे। देशपर कोई विपद आनेपर पहला वार वे अपने ऊपर लेंगे।

६. स्वराज्यमें अगर देशकी सेनासे जनताको खुद ही भयभीत रहना पड़े और उसीपर सैनिकोंकी गोलियां चलें तो वह स्वराज्य या राम-राज्य नहीं बल्कि शैतानका राज्य होगा। सत्याग्रहीका धर्म उस राज्यका भी विरोध करना ही होगा।

७. देशका सिपाही प्रजाका मित्र हो, प्रजाकी आपत्तिके समय उसके लिए प्राण देनेवाला हो तो वह क्षत्रिय है; पर यदि वह प्रजाको डरानेवाला और शरीर या शस्त्रके बलसे उसे पीड़ित करनेवाला हो तो वह लुटेरा है। यदि राज्यकी ओरसे उसे आश्रय मिलता हो तो वह लुटेरोंका राज्य है।

खंड ६ :: वाणिज्य

१

पश्चिमी अर्थशास्त्र

१. पश्चिमका अर्थशास्त्र गलत दृष्टिबिंदुओंसे रचा गया है इसलिए वह अर्थशास्त्र नहीं बल्कि अनर्थशास्त्र हो गया है।

२. वे गलत दृष्टिबिंदु ये हैं--

(अ) उसने भोग-विलासकी विविधता और बहुलताको संस्कृति-का प्राण माना है।

(आ) वह दावा तो करता है ऐसे अचल सिद्धांत निकालनेका जो सब देशों और सब कालोंपर घटित होते हों, परंतु वास्तवमें वह यूरोपके छोटे, ठंढे और खेतीके लिए कम अनुकूलतावाले देशोंके घनी आबादीवाले होते हुए भी मुट्ठी भर लोगोंकी अथवा बहुत थोड़ी आबादी-वाले उपजाऊ बड़े खंडोंकी परिस्थितिके अनुभवके आधारपर ही बना है।

(इ) पुस्तकोंमें भले ही निषेध किया गया हो, पर योजना और व्यवहारमें वह (क) व्यक्ति, वर्ग या बहुत आगे बढ़े तो अपने नन्हे-से देशके ही अर्थ-लाभको प्रधानता देनेवाली और उसके हितकी पुष्टि करनेवाली नीति ही अर्थ-शास्त्रका अचल शास्त्रीय सिद्धात है, यह मानने और मनवानेकी तथा (ख) कीमती धातुओंको हदसे ज्यादा महत्त्व देनेकी पुरानी लीकमेंसे आज भी नहीं निकल पाया है।

(ई) उसकी विचार-सरणिमें अर्थका नीति-धर्मसे कोई संबंध नहीं रह गया है, इस कारण जीवनके अर्थकी अपेक्षा अधिक महत्त्वके विषयोंको गौण समझनेकी आदत उसने जनतामें डाली है।

३. इसके फल-स्वरूप--

(अ) यह अर्थ-शास्त्र यंत्रों, नगरों तथा (खेतीकी अपेक्षा) उद्योगों-का अंधपूजक बन गया है।

(आ) इसने जनताके भिन्न-भिन्न वर्गो और भिन्न-भिन्न देशोंमें समन्वय स्थापित करनेके बजाय विरोध उत्पन्न किया है और सर्वोदय, सबके हितके बदले थोड़ेसे लोगोंका थोड़े समयके लिए ही लाभ किया है।

(इ) यह पिछड़े समझे जानेवाले देशोंमें आर्थिक लूट मचाकर तथा वहाके लोगोंको व्यसनोंमें फंसाकर और उनका नैतिक अधःपात करके समृद्धिका रास्ता निकालना चाहता है।

(ई) इस अर्थशास्त्रको स्वीकार करनेवाली जनता पशुबलके भरोसे ही जीती है।

(उ) शास्त्रीय सिद्धांतोंके नामपर इसके पोसे हुए वहम तथा-कथित धार्मिक या भूत-प्रेतादिके अंधविश्वासोंसे कम बलवान नहीं हैं।

२

भारतीय अर्थशास्त्र

१. और बातोंको अलग रखे तो भी हिंदुस्तान अति विशाल देश है; इसकी आब-हवा विविध प्रकारकी है; इसकी जमीन तरह-तरहकी है और हजारों वर्षोंसे जोती जाने तथा जनताकी गरीबीके कारण भी उसका उपजाऊपन घट गया है; इसकी जनता गिनतीमें कुल मनुष्य-जातिका पंचमांश है, वह छोटे-छोटे गांवोंमें बटी हुई है, उसमें अनेक प्रकारकी---धर्म, संस्कृति, स्वभाव और रस्म-रिवाजोंकी विविधता है। ये स्थूल कारण ही भारतीय अर्थशास्त्रका विचार पश्चिमकी लीकसे निकलकर करनेकी आवश्यकता सिद्ध करनेको काफी है।

२. भारतीय अर्थशास्त्रकी विशेषताएं ये बतायी जा सकती हैं--

(अ) उसका विचार गांवोंकी दृष्टिसे किया गया हो।

(आ) उसमें खेती और उद्योगका परस्पर निकट-संबंध हो, दोनों सामान्य रूपसे एक ही छप्परके नीचे रह सकते हों।

(इ) इस अर्थशास्त्रका विचार इस तरह किया गया होगा जिससे विविध धर्मों, संस्कारों और स्वभावों वाले लोगोंमें हित-विरोध, कलह और अनुचित स्पर्धा न पैदा हो।

(ई) अतः उसे नीतिधर्मको हर कदमपर निगाहके सामने रखकर सर्वोदय सिद्ध करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

३

ग्राम-दृष्टि

१. हिंदुस्तान गांवोंमें बसा है, यह बात तो बारंबार कही गयी है; पर हिंदुस्तानकी संपत्ति-संबंधी आजकी अधिकांश योजनाएं गांवोंके हितकी दृष्टिसे नहीं बनायी गयी हैं, बल्कि शहरों और विदेशोंके हितकी दृष्टिसे ही रची गयी है।

२. इसका नतीजा यह हुआ है कि गांवोंका कच्चा माल शहरोंमें पटता है और शहरोंके जरीये विदेश जाता है, और शहरों तथा विदेशोंमें बने पक्के मालसे गांवोंको पाटनेकी कोशिश की जाती है। इसकी वजहसे बहुत-सा कच्चा माल बेचकर मिले हुए थोड़े पैसे पीछे थोड़ा-सा पक्का माल लेनेमें खर्च हो जाते हैं और ग्रामवासीका हाथ खाली-का-खाली रह जाता है।

३. इसके सिवा जीवनके बहुतेरे साधन जो गांवोंके खेतों और जंगलोंमें लगभग मुफ्त मिल सकते हैं और जिन्हें एकत्र करके लोगोंतक पहुंचानेसे गरीबोंका सहजमें गुजारा हो सकता है उनके बदले शहरों और विदेशोंमें बना हुआ देखनेमें थोड़ा-बहुत सुविधाजनक लेकिन अधिकांशमें दिखावेके लिए ही आवश्यक और अच्छा लगनेवाला माल काममें लानेका फैशन बढ़ जानेसे देहातके बहुतसे उद्योग और मजदूरीके धंधे नष्ट हो गये और होते जा रहे हैं।

४. ऐसा अधिक आकर्षक सामान तो आरोग्य और स्वच्छताकी दृष्टिसे हानिकर और गंदा भी होता है, खर्चीला तो होता ही है; इससे लोगोंको निकम्मी और खर्चीली आदतें लगा लेने भरका लाभ होता है। मिसालके तौरपर—दतौनके बदले तरह-तरहके दंत-मंजन, पेस्ट, टूथब्रश; गुड़ और पीली शक्करकी जगह मिलकी सफेद दानेदार चीनी; लकड़ीकी

सुतली या निवाड़से बिनी खाट या पलंगके बदले लोहेके पाइप या छड़के पलंग; खपरैलकी जगह टीन; सन, पटुए, मूंज आदिकी बाध-रस्सियोंके बजाय तार और तारकी डोरियां; देहाती चटाइयोंके बदले चीनी और जापानी चटाइयां; गांवोंमें बांस या घासके बने सूप, दौरे-दौरी, पिटारी आदिके स्थानपर लोहेकी चादरके बने सूप, डब्बे आदि; देहाती लुहार या कसेरेकी बनायी जंजीर, कड़ियों, हत्थे आदिके बदले मशीनसे बने तार या पत्तरकी वैसी ही कमजोर परंतु आकर्षक चीजें; देहातके सुनारके बनाये गहनोके एवजमे शहरोंमे मशीनसे तैयार किये हुए गहने; देहाती स्त्रियोंद्वारा गूंथे पंखे, कढ़े आसन, जाजिम, शाल आदिके बदले जापानी कागजके पंखे, मिलमे मशीनसे बने कामदार आसन, शाल वगैरा; रीठा, सिकाकाई इत्यादि प्राकृतिक वस्तुओंके बदले सुगंधित साबुन; नरकटके बदले तरह-तरहकी फाउंटेन और होल्डर पेन, और उनके फलस्वरूप देहाती रोशनाईके बदले रासायनिक रोशनाइया; देहातके कागजकी जगह मशीनके कागज, घरेलू ताजे काढ़े और अर्कोंके बदले तैयार दवाइयोंकी बोतलें; इत्यादि।

५ ये सब चीजें गांवोंकी वस्तुओंसे अधिक सस्ती पड़ती हों सो बात नहीं है। चीजोंकी मोहकता और धनवान पर अविचारी लोगोंके चलाये फैशनके अंधानुकरणमे सभ्यता मानने तथा लोगोंके भीतर जड़ जमा रखनेवाले आलस्य और जड़ताके कारण, अपनी आर्थिक स्थितिसे मेल न खानेपर भी, ये चीजें खरीदी जाती है।

६. फिर अविचारी यंत्रवादने भी देहातको कंगाल बनानेमे काफी बड़ा हिस्सा लिया है; जैसे, कपास लोढ़ने, आटा पीसने, चावल कूटने, तेल पेरनेके कारखाने, मोटरे, लारियां आदि।

७. इसके सिवा बीचके व्यापारियोंकी संकुचित और तुरंत अधिक मुनाफा कमा लेनेकी स्वार्थ-दृष्टिने बहुत-से देहाती मालको, विदेशी और मशीनके मालकी अपेक्षा पड़तेमें महंगा न होते हुए भी, खरीदारके लिए महंगा बना दिया है। इससे जो बाजार सहजमें देहातके हाथमें रह सकता है वह भी कारखानेवालों और विदेशियोंके हाथमें चला गया है।

८. जब अर्थशास्त्र और जीवनमें ग्राम-दृष्टिका प्रवेश होगा तब देहातकी बनी चीजोंका अधिकाधिक उपयोग करनेकी ओर जनताका मन झुकेगा, अपने जीवनकी आवश्यक वस्तुएं देहातमे तैयार करानेकी ओर उसका झुकाव होगा; इसके फलस्वरूप देहातकी कला और औजारोको सुधारनेकी, देहातके लोगोंको सिखाने-पढ़ानेकी, देहाती जंगल और खेतोंकी पैदावार तथा उपयोग करनेके ज्ञानके अभावमे देहातमे बेकार चले जानेवाले संपत्तिके अनेक प्राकृतिक साधनोंकी जांच-पड़ताल करनेकी प्रवृत्ति पैदा होगी।

९. आज संपत्ति देहातसे शहरोंमे होकर विदेश चली जाती है। इस प्रवाहको बदल देनेकी जरूरत है, जिसमे देहातकी संपत्ति देहातमे ही रहे और देहात स्वावलंबी बनें, इतना ही नही बल्कि शहरवालोंकी आवश्यकताका अधिकांश माल भी वही प्रस्तुत करे।

४

धनेच्छा

१. मनुष्योंका बड़ा भाग आर्थिक स्थिति और सुख-सुविधाओंमे सुधार और बढ़ती कराना चाहता है; यह बात सामान्य रूपसे भले ही कही जाय, पर मनुष्योंकी धन या सुखकी इच्छाकी कोई सीमा ही नही होती और सभी लखपती, जमीदार या राजा बनने अथवा बागों और महल-अटारियोंमें रहनेको लालायित रहते है, सामान्य रूपसे ऐसा कहना और इसके लिए दलील-सबूत देना साधारण मनुष्योंको न समझने, उनके बारेमें हलकी राय रखने और उनके सामने क्षुद्र आदर्श प्रस्तुत करनेवाली बात है।

२. जन-साधारणका बड़ा भाग धनको ठोकर भी नहीं मारता और उसकी अपार तृष्णा भी नहीं रखता। सालके अखीरमें दो पैसे बच रहें यह वे जरूर चाहते है––पर केवल इस विचारसे और इतने ही कि बीमारी, मौत, शादी-ब्याह या बुढ़ापे में काम आये, अथवा पर्व-

त्यौहार, यात्रा, दान-धर्मका काम चल जाय। धार्मिक संस्कारोंवाली जनता धन तथा सुखकी तृष्णाको अमर्यादि न होने देनेका संस्कार थोड़ा-बहुत काम करता ही रहता है।

३. जैसे सब राजा न सिकंदर या नेपोलियन बननेकी और न भर्तृहरि या गोपीचंद होनेकी हवस या उसके लिए पुरुषार्थ करनेका सामर्थ्य रखते है, वैसे ही करोड़ों मनुष्य न श्रीमान बननेकी और न निष्किचन बननेकी हवस या हिम्मत रखते हैं।

४. पर प्रत्येक जन-समाजमें कुछ लोगोंकी महत्त्वाकांक्षा और वैसे ही पुरुषार्थ करनेकी शक्ति असाधारण होती है। ऐसे कुछ मनुष्य तो अकिंचन बननेका आदर्श रखते है तो और कुछ लाखों रुपये पैदा कर दिखानेका।

५. समाजकी व्यवस्था और रचना ऐसी होनी चाहिए कि लोगोंकी आवश्यक सुख-सुविधा और धनेच्छाको धक्का पहुंचाये बिना ऐसे मनुष्योंको पुरुषार्थ करनेका उचित अवसर मिले; यही नही, इसके फल-स्वरूप उनकी महत्त्वाकांक्षाका पोषण हो तो भी उससे अंतमें समाजका लाभ ही हो।

६. यदि समाज-व्यवस्थामें ऐसे पुरुषार्थके लिए उचित अवसर न हो तो उनकी महत्त्वाकांक्षा उनके पुरुषार्थको गलत रास्ते ले जायगी और समाजको हानि करेगी।

७. उद्योग-धंधे तथा समाज-सेवाके कितने ही कामोंमे अनेक प्रकारके साहस और जोखिम उठाने पड़ते हैं। उनकी सिद्धि संदिग्ध होती है और तत्संबंधी प्रयोगोंके लिए सार्वजनिक सभा-सोसायटियोंकी अपेक्षा निजी रूपमें मनुष्य या निजी संस्थाएं अक्सर अधिक अनुकूल पड़ती हैं। समाज-रचना ऐसी होनी चाहिए कि इसके लिए अनुकूल हो।

५

व्यापार

१––व्यापारका उचित क्षेत्र आवश्यक बड़े उद्योगोंका विकास करना और जरूरी चीजें लोगोंके पास पहुंचाना है। इसमें अनायास जो बचत हो जाय उसीको मुनाफा कह सकते हैं।

२. अनायास होनेवाली बचतसे मतलब है उद्योग या व्यापारमें जो कुछ खर्च पड़े उसे वस्तुपर फैलाते समय नुकसानकी जोखिम टालनेके लिए जो थोड़ी गुंजाइश (मार्जिन) रक्खी जाती है उससे होनेवाली बचत*। यह बचत फुटकर रोजगारमें तो बहुत मामूली होती है, पर बड़े पैमानेपर किये जानेवाले उद्योग-व्यापारमें कुल मिलाकर बड़ी हो सकती है।

३. इस प्रकार बढ़नेवाले धनका उपयोग उस उद्योगमें लगे हुए मजदूरोंकी भलाईमें, या उस उद्योग अथवा दूसरे उपयोगी उद्योगोंकी उन्नति-में, या सार्वजनिक हितके बड़े कार्य आरंभ करनेमें किया जाना चाहिए।

४. यदि ऐसे धनका मालिक अपनेको उसका रक्षक माने और उसका उपयोग इस रूपमें करना धर्म समझे तो पूंजीपति माने जाते हुए भी उससे जनताका हित होगा और वह ईर्ष्याका पात्र न बनेगा।

५. पर वह यदि इससे केवल स्वार्थ ही साधे और पैसा या वैयक्तिक सुख-भोग बढ़ानेकी ही दृष्टि रक्खे तो वह अपनेको तिरस्कारका पात्र बना लेगा और इसके फल-स्वरूप मालिक-नौकरके बीच भेद-भाव बढ़ानेवाला और कलह उत्पन्न करनेवाला हो जायगा।

६. यदि धनवान ऐसा व्यवहार रक्खे कि उसके बाग-बगीचे, बंगले, गहने, गाड़ी-घोड़े, ठाठ-बाट, बरतन, दरी-गलीचे आदि उसके अधीन

---

* **उदाहरण––फर्ज कीजिए कि सारा खर्च जोड़नेपर एक गज खादीकी कीमत ०–५–१ होती है। तब नुकसानसे बचनेके लिए वह ०–५–३ रखली जाय तो २ पाई मुनाफा रहेगा।**

काम करनेवालोंको उनके ब्याह-बरातके अवसरोंपर इस्तेमाल करनेको मिल सके, यदि वह इस बातको अपना कुल-धर्म समझे कि उनके यहां पड़नेवाले ऐसे कामोंको इस तरह पार लगा दे कि उनका मन प्रफुल्लित हो जाय, और इसके साथ ही यदि गरीबोंका जीवन कष्टहीन हो तो धनीके अधिक सुख भोगनेसे गरीबोंको उसकी डाह न होगी; उलटे अधिकांश लोग तो उपभोगके साधनोंकी संभालके झंझटोंसे बचे रहना ही पसंद करेंगे।

७. जहां धनीका ऐसा व्यवहार हो वहां मोटे हिसाब यह कह सकते हैं कि वह अपने धनका उपयोग रखवालेके रूपमें करता है। इसमें धन-लोभका सर्वथा अभाव नहीं है, पर यह जन-समाजका द्रोह किये बिना और आवश्यकताके समय काम आनेवाला धन-संग्रह है।

८. ऐसी सविवेक पूंजीवादी व्यवस्थाको नाश करनेके लिए साम्य-वादकी किसी दलीलके प्रभावमें आकर ही जनता तैयार न होगी।

९. इसके अतिरिक्त यदि धनी स्वयं सादा और संयमका जीवन बितानेवाला हो तो वह पैसेवाला माना जाते हुए भी जनताके लिए पूज्य हो जायगा।

६

साहूकारी

१. थोड़े ब्याजपर रुपया लेकर अधिक ब्याज उपजानेमें लगाना ब्याज-बट्टा अथवा साहूकारी कहाता है। पर समाज-हितके लिए जो साहूकारी अनिवार्य है वह इस तरहकी नहीं है।

२. आज जिस प्रकारका ब्याज-बट्टा दुनियामें चल रहा है वह या तो विदेशी व्यापारियोंकी दलाली या आढ़तका पेशा है, अथवा किसानों तथा दूसरे धंधे करनेवालोंकी जमीन-जायदाद और माल-मिल्कियत, या इससे भी आगे बढ़ें तो पर-राज्योंको धीरे-धीरे पचा जानेके खोटे उपाय हैं। यूरोप, अमेरिका–सरीखे देशोंमें भी अधिक ब्याजके लोभने अपने देशके गरीबोंके हितकी उपेक्षा करके विदेशोंमें रुपया लगानेकी प्रवृत्ति पैदा कर दी है। इससे धनी देशोंमें भी कष्ट बना रहता है।

३. रोजगारमें झूठ बोलनेमे दोष नही है यह मानना भयंकर अधर्म-की बात है।

४. अपढ़, भोले और विश्वासपरायण लोगो अथवा विलास-लिप्त अमीरों या राजा-रईसोंको बुरे खर्चों और व्यसनोमे पड़नेको प्रोत्साहित कर उन्हें कर्जमे फंसाना, देन-लेनके व्यवहारमे उन्हें ठगना, झूठे बहीखाते और दस्तावेज बनाना साहूकारी नही बल्कि ज्वलंत पाप और हिंसा है।

५. ऐसे अधर्मभरे ब्याज-बट्टेके रोजगारसे अर्थ नही बल्कि अनर्थकी वृद्धि हुई है।

६. मनुष्यको अपनी बचतकी पूजी किसी उद्योग-धंधेकी सहायता-में लगानी चाहिए। यह पहले स्वदेशमे ही लगनी चाहिए। उद्योगोंमें लगानेके बाद भी बचे तो सबमे पहले स्वदेशके सार्वजनिक हितके कामोको बढ़ानेमे उसका उपयोग होना चाहिए। पूंजीको कायम रखकर उसके ब्याजसे ही जन-हितके कार्य होने चाहिएं, यह विचार सदा सही नही होता। इस विचारके कारण पूंजीका अधिक-से-अधिक उपयोग करनेके बजाय अधिक-से-अधिक ब्याज कमानेकी वृत्ति पैदा हुई है।

७. कौटुंबिक कार्य ब्याजपर रुपया लेकर करनेकी मनाही होनी चाहिए। सामाजिक रस्म-रिवाजोंमें इस तरहका सुधार होना चाहिए कि वे कम-से-कम खर्चमे हो सकें। फिर भी बीमारी अथवा ऐसी दूसरी आपत्तियो या विवाहादिक अवसरोंपर रुपयेकी तंगी पड़ जाय तो वैसी सहायता समाजसे मित्रताके नाते बिना ब्याजके मिलनी चाहिए। घरेलू उपयोगके लिए दुकानदार उधार माल दे तो उसपर और ऊपर बताये हुए कौटुंबिक कार्योंमे कर्जके रूपमें ली हुई सहायतापर भी ब्याज लेना गैरकानूनी समझा जाना चाहिए।

८. आजकल तो ऐसे कर्जोंपर अधिक ब्याज मिल सकता है, और इससे धनिकोंको उनसे लेन-देन रखने वालोको व्यसनों और फजूलखर्चीमें फंसानेका प्रलोभन होता है।

९. दूसरी ओर मीयाद तथा नादारी-नादिहंदीके कानूनोंने जनता-

की नैतिक भावनाका नाश करनेमें जबर्दस्त हिस्सा लिया है। इनकी बदौलत दिवाला निकाल देने, सट्टेबाजी और लौटानेकी नीयत न रखते हुए कर्ज लेनेकी प्रवृत्ति आदिको उत्तेजन मिला है।

१०. इस तरहसे कर्जदार और साहूकारका संबंध चूहे-बिल्ली जैसा, अथवा एक-दूसरेको ठगनेकी कोशिश करनेवाले शत्रुओंका-सा हो गया है। पुश्त-दर-पुश्त चले, एक दूसरेका हित करे, जिसमें साहूकार ऋण लेनेवालेके उद्योग-धंधे बढ़ानेमें सहायता पहुंचानेकी नीयत रक्खे और कर्जदार अपने पुरखोंका वाजिब कर्ज अदा करनेमें अपना कुल-गौरव समझे—इस प्रकारका संबंध नहीं रह गया है।

११. जो हालत कर्जदार और साहूकारकी हुई है वही नौकर और मालिककी हो गयी है।

७

पूरी मजदूरी

१. मनुष्य चाहे जिस प्रकारका श्रम करे, यदि वह उसे दिये गये साधनों और तालीमका समुचित उपयोग ईमानदारीसे दिनके पूरे समय करता है तो उसे इस श्रमके बदलेके रूपमें इतनी मजदूरी मिलनी या पड़ जानी चाहिए जिससे उसका और उसके अशक्त आश्रितोंका गुजारा संतोषजनक रीतिसे हो जाय।

२. देहातके आजके साधनों, रहन-सहन आदिको ध्यानमें रखते और ग्राम-जीवनके दर्जेको जितना ऊपर ले जाना नितांत आवश्यक है उसका विचार तथा चीजोंके आजके भावका खयाल करते हुए आठ घंटे एक दिनकी मजदूरीका समय और घंटा पीछे एक आना मजदूरीकी आवश्यक दर मानी जानी चाहिए।

३. इस स्थिततिक एकबारगी पहुंचनेके लिए कदम उठानेकी भले ही हमारी हिम्मत न हो, पर इस दिशाको ध्यानमें रखकर हमें सतत प्रयत्न तो करना ही चाहिए।

४. आदर्श स्थिति और वर्ण-धर्मकी संपूर्णता तो तब समझी जायगी जब सब धंधे करनेवालोंकी आमदनी एक-सी हो। पर इसकी संभावना आज निकट भविष्यमें नहीं दिखाई देती। इसलिए इस आदर्शको ध्यानमें रखकर जहांतक जाया जासके वहांतक उत्तरोत्तर बढ़नेकी नीति स्वीकार की गयी है।

८

मजदूरके प्रश्न

१. जीवन-विषयक गलत दृष्टिकोणोंने मजदूरोंके प्रश्नको उलझा दिया है।

२. वे गलत दृष्टिकोण ये हैं—

(अ) मनुष्य अवकाश-ही-अवकाश चाहता है और कामको बेगार समझता है।

(आ) मनुष्यके आध्यात्मिक विकासके लिए अवकाशकी ही आवश्यकता है, शारीरिक श्रम उसका विरोधी है।

(इ) कम-से-कम काम करके अधिक-से-अधिक सुख प्राप्त करना श्रम-विभागका ध्येय है।

(ई) मालिक और मजदूरके स्वार्थ एक-दूसरेके विरोधी हैं।

३. उपर्युक्त कारणोंसे मजदूरोंमें नीचे-लिखे गलत आदर्श फैलानेका प्रयत्न किया जाता है—

(अ) खूब यांत्रिक सुधार करके, दो या चार घंटेके श्रमसे ही जीवनकी आवश्यकताएं पूरी कर लेनी चाहिए।

(आ) पूंजीपतिका नाश करना है।

४. ये आदर्श शायद कभी सिद्ध हो जायं, पर इनसे मानव-जातिको सुख ही मिलेगा इसका निश्चय नहीं है।

५. वास्तवमें मजदूरोंके, या यों कहिए कि अधिकांश जनताके सुखके लिए नीचे बतायी दृष्टिसे विचार करना चाहिए—

(अ) मनुष्यको बाह्य साधनोंका इतना अधिक मुहताज नहीं बना

देना चाहिए कि उसकी श्रम करनेकी स्वाभाविक शक्तिका ह्रास हो जाय और वह श्रमसे निर्वाह करनेके अयोग्य बन जाय।

(आ) अतः मनुष्यकी शारीरिक श्रम करनेकी शक्ति बढ़नी चाहिए, और कामके घंटे, मजदूरके खान-पान तथा घरबार आदिकी सुविधाओं-का विचार उसकी शक्तिकी रक्षा करने और बढ़ानेकी दृष्टिसे किया जाना चाहिए।

(इ) अत्यंत सूक्ष्म श्रम-विभाग करके मजदूरको जड़ यंत्र जैसा बना देकर दो-चार घंटेकी नीरस यांत्रिक क्रियामें उसे जोतना और फिर मौज-चैन या शौककी बातोंके लिए छोड़ देना, इससे मनुष्य जातिका कल्याण न होगा। बल्कि उद्योग-धंधोंकी व्यवस्थाके ऐसे रास्ते ढूंढने चाहिए जिनसे उसे अपने करनेके काममें ही आनंद आये, वही उसके शौककी चीज बन जाय और उसीमें वह अपना आध्यात्मिक विकास भी कर सके।

(ई) इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्यको अपने धंधे-व्यवसायके सिवा और कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है, और न फुर्सतकी ही जरूरत है। हर आदमीको कोई निर्दोष शौक भी होना चाहिए और उसके लिए उसे फुरसत भी मिलनी चाहिए; पर उसका स्थान गौण ही रहना चाहिए। अभीतक ऐसी संस्कारिताका प्रसार नहीं हो पाया है जिससे मानव-समाजका बड़ा भाग अवकाशका समय उचित रीतिसे बिता सके। आज तो उस बड़े भागकी फाजिल फुर्सतका समय नींद, व्यसन और दोषमय भोगोंमें ही बीतनेका डर है।

(उ) मनुष्यको जो अपने गुजरके लिए कठिन श्रम करना पड़ता है यह प्रकृतिका कोप नहीं बल्कि अनुग्रह है। ऐसा श्रम करनेका सामर्थ्य बढ़े यह ध्येय होना चाहिए, श्रम न करना पड़े यह नहीं।

(ऊ) यदि मालिक मजदूरोंका व्यवस्थापक बनकर उनसे उनकी शक्तिभर ही काम ले और पूरी मजदूरी तथा सुख-सुविधाका प्रबंध कर दे और मजदूर मालिकके कामको अपना समझकर उसमें मन लगाकर मेहनत करे तो इसमें दोनोंका हित सधेगा।

(ए) इसके लिए निजी पूंजीका होना-न-होना अधिक महत्त्वका प्रश्न नहीं है बल्कि उद्योग और वाणिज्यका लक्ष्य बदल देनेकी जरूरत है।

(ऐ) उद्योगका लक्ष्य व्यापार बढ़ानेके लिए नयी-नयी जरूरतें खड़ी करना नहीं है, बल्कि जो आदतें और जो जरूरतें पैदा हो चुकी हैं उनकी अच्छे-से-अच्छे ढंगसे पूर्ति कर देना भर है। व्यापारका भी इतना ही प्रयोजन है। ऐसा करते हुए कितनी ही नयी आवश्यकताएं पैदा होनेकी संभावना अवश्य है, लेकिन यह ध्येय ध्यानमें रक्खा जाय तो वाणिज्य पिछड़ी जातियोंकी आवश्यकताएं बढ़ानेके लालचमें न पड़ेगा और उन्हें चूसनेकी नीति न अपनायेगा। ऐसा होनेसे मजदूर और मालिक अन्योन्याश्रित बनकर रहेंगे।

(ओ) ऐसा ध्येय न रहनेपर पूंजीपतिके रूपमें व्यक्तिके बदले जड़-तंत्र मालिक बनेगा, अथवा एक राष्ट्र मालिक और दूसरा राष्ट्र मजदूर बनेगा। इससे मनुष्यका सुख बढ़ेगा नहीं।

९

स्वावलंबन और श्रमविभाग

१. स्वावलंबनका अर्थ श्रम-विभागका विरोध नहीं है और न दूसरे देशोंके साथ औद्योगिक संबंधका अभाव है। समाजमें रहनेवाले लोग संपूर्ण रूपसे स्वावलंबी हो सकें, अर्थात् अपनी प्रत्येक आवश्यकता अपने ही श्रमसे पूरी कर लें, यह शक्य नहीं। ऐसा प्रयत्न मिथ्या अहंकार और मिथ्या प्रयासका रूप ले सकता है। सारे जगतके साथ प्रेम और अहिंसाद्वारा एकरूप होनेका आदर्श रखनेवाला स्वयं-पर्याप्त (self-sufficient) होनेका झूठा मोह नहीं रक्खेगा।

२. तथापि मनुष्य अपनी जितनी जरूरतें और जितने काम खुद आसानीसे पूरी कर ले या निपटा सकता है और जिनके लिए प्राकृतिक अनुकूलताएं भी हों उनमें स्वावलंबी रहना दोष नहीं बल्कि उचित है। उसे इनके लिए दूसरेसे काम लेना ही चाहिए और उसके लिए रुपये-पैसेके

लेन-देनका संबंध कायम करना ही चाहिए, यह धर्म नहीं है। मिसालके तौरपर मनुष्यको अपने कपड़े धोबीसे ही धुलाने चाहिएं, पाखाना भंगीसे ही साफ कराना चाहिए, हजामतके लिए नाईको ही बुलवाना चाहिए, या खाना बासेमे जाकर ही खाना चाहिए—यह फर्ज नहीं कहा जा सकता।

३. यही नियम देश और जनताके व्यवहारोंमें भी घटित होता है। हिंदुस्तान जैसा देश जिसमें काफी अनाज और रुई पैदा होती है, अन्न और वस्त्रके मामलेमें स्वावलंबी बन जाय तो यह नहीं कह सकते कि वह स्वयंपर्याप्त बननेका मिथ्या प्रयत्न करता है या दूसरे देशोंके साथ औद्योगिक संबंध नहीं रखना चाहता।

४. इसी तरह जिन उद्योगोंके विकासके लिए भारतवर्षमे प्राकृतिक अनुकूलताएं हैं उन उद्योगोंके विकासके उपाय वह करे तो इसमे कोई दोष नहीं। ऐसी आर्थिक नीति अपनाये बिना राष्ट्रको सुखी बनानेकी आशा रखना बेकार है।

५. भारतका अनाज विदेश भेजकर वहांसे रोटी मंगाकर खाना, यहांसे तेलहन या मूंगफली भेजकर वहांसे तेल पेरवाकर मंगाना, रुई भेजकर कपड़ा मंगवाना और इस पद्धतिको देशांतर (अंतर्राष्ट्रीय) श्रम-विभाग और देशांतर-सहयोगका नाम देना, अथवा लंकाशायर जैसे परगनेमें लोहे और कोयलेकी खानें हैं और वहांकी हवा नम है इसीलिए यह कहना कि कपड़ा बनानेकी वहीं अनुकूलता है, श्रम-विभाग और सहयोग-तत्त्वका दुरुपयोग है।

१०

राजनीतिक स्वदेशी

१. हरएक देशकी आर्थिक नीति यही होनी चाहिए कि जहां कच्चा माल हो वहीं उससे संबंधित उद्योग चलानेके कारखाने हों। आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिसे इसीको 'स्वदेशी आंदोलन' कहते हैं।

२. कच्चे मालका विदेश जाना और वहांसे चीजोंकी शक्लमें फिर स्वदेश लौटना आर्थिक दृष्टिसे लाभजनक प्रतीत होता हो तो बहुत संभव है कि उसके मूलमें स्वदेशमें या विदेशमें कोई अन्याय या अधर्म हो अथवा हिसाब लगानेमें कहीं-न-कहीं भूल हो रही हो।

३. इंगलैंडने जिसे 'फ्री ट्रेड' अथवा मुक्त द्वार व्यापारका नाम दे रक्खा है वह वास्तवमें वैसा व्यापार नहीं है, क्योंकि वह अपने उद्योगोंकी रक्षा तथा दूसरे देशोंके उद्योगोंको मटियामेट करनेके लिए जकातका नहीं बल्कि सैनिक-बल, राजनीतिक शक्ति और कुटिल नीतिका उपयोग करता है। स्वदेशीकी नीतिका यह अधम और अन्यायी रूप है।

४. आर्थिक दृष्टिसे स्वदेशी और बहिष्कारमें भेद नहीं है। जिस चीजपर करोड़ोंका जीवन अवलंबित हो वैसी वस्तु विदेशोंसे कदापि नहीं लाने दी जा सकती। अर्थात् उसका बहिष्कार करना ही पड़ेगा। यह बहिष्कार किसी खास देशके नहीं, बल्कि सब विदेशोंके विरुद्ध होगा, इसलिए यह 'स्वदेशी' ही है।

५. देश-विशेषके खिलाफ चलाया गया बहिष्कार राजनीतिक दृष्टिसे किया जाता है. इसलिए उसका विचार इस प्रकरणमें करनेकी आवश्यकता नहीं।

११

यांत्रिक साधन

१. भारतीय अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे यांत्रिक साधनों तथा उनमें किये जानेवाले सुधारोंके दो भाग किये जा सकते हैं--(१) वे यंत्र और उनके सुधार जो मुख्यतः इस दृष्टिसे बनाये या किये गये हों कि श्रम करनेवाले मनुष्य या पशुके स्नायुओंको थोड़ा कम श्रम पड़े और उनका थोड़ा-सा समय बच जाय; जैसे, ढेंकुल, चक्की, चरखा, साइकिल, सीनेकी कल, शटल करघा, गाड़ी इत्यादि; तथा उनमें घिसाई आदिके दोष (Frictions) कम करनेके लिए किये गये सुधार; जैसे छर्रेवाले चक्कर (बाल बियरिंग),

पक्की सड़कें, रेलकी पटरी इत्यादि। (२) ऐसे यंत्र जो श्रम करनेवाले मनुष्य या पशुका स्थान ग्रहण करनेके लिए अर्थात् मजदूर या पशुकी संख्या घटानेके लिए, अथवा मजदूरोंकी बुद्धि-चातुरी या शरीर-बल-का उपयोग करनेके बदले उनका केवल जीवित यंत्रके तौरपर इस्तेमाल करनेके लिए बनाये जायं; जैसे, आटा पीसनेकी मिल, चावल कूटनेकी कल, तेल पेरनेकी कलें, शक्करके कारखाने, सूत और कपड़ेकी मिलें, मोटर, रेलगाड़ी इत्यादि माल ढोनेके साधन, मेशीनका हल (ट्रैक्टर), भाप या बिजलीसे चलनेवाले पानीके पम्प, सूक्ष्म श्रम-विभागके फल-स्वरूप बने यंत्र इत्यादि।

२. पहले प्रकारके यांत्रिक साधन और उनमें होनेवाले सुधार सामान्यतः इष्ट हैं। उनसे भी मजदूर या पशुकी संख्या घट सकती है, पर कम-से-कम घटेगी।

३. दूसरे प्रकारके यांत्रिक साधनों और सुधारोंका उपयोग करनेमें विवेक और सावधानी रखनी होगी। अर्थात् ऐसे साधनों और सुधारोंका कौन कितना उपयोग करे इसपर जनताकी सरकारका वैसा ही नियंत्रण रहना चाहिए जैसा शस्त्रास्त्र, गोला-बारूद बनाने और इस्तेमाल करने-पर रहता है।

४. दूसरे प्रकारके यंत्रोंका व्यवहार किस परिस्थितिमें दोषरूप नहीं समझा जा सकता इसके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(अ) जहां काम बहुत और करनेवाले थोड़े हों और अधिक आदमी मिलना या रखना कठिन हो; जैसे, जहाजपर।

(आ) जहां आकस्मिक अड़चनकी वजहसे अथवा दूसरे कारणोंसे कामका प्रकार ही ऐसा हो कि उसे जल्दी-से-जल्दी निपटानेकी जरूरत हो और यांत्रिक साधनोंके बदले अधिक आदमी बटोरनेसे अव्यवस्था, देर लगने और खतरा बढ़नेकी संभावना हो; जैसे, आग बुझाना, अकाल या अन्य प्राकृतिक विपत्तियोंमें लोगोंकी रक्षा करना, अथवा अनाज आदिकी सहायता पहुंचाना।

(इ) जो यंत्र और उनके सुधार सहायक धंधा दे सकते हों अथवा

वैसे धधेको अधिक अच्छी स्थितिमे ला सकते हों. फिर भी उसके महा-यकपनका नाश करनेवाले न हों; जैसे, ज्यादा काम देनेवाला चरखा. रस्सी बंटनेका चक्र, इत्यादि।

(ई) पहले प्रकारके कल-पुर्जे बनानेके यंत्र, औजार आदि बनाना, खास करके वहा जहा एक ही माप और एक ही ढंगके यंत्र अथवा उनके पुर्जे बनानेका महत्त्व हो;

(उ) जहां बिलकुल सही काम देनेवाले सूक्ष्म साधनोंकी आवश्य-कता हो; जैसे कि घड़ी, टाइपराइटर, प्रयोगशालाके उपकरण आदिके बनानेमे;

(ऊ) ऐसी वस्तुओंके बनानेमे जिनमे जनताका बड़ा भाग कभी लगाया नही जा सकता पर जिनका उपयोग सार्वजनिक हो; जैसे, नल-के पाइप, टोंटियां और काचके घरेलू बरतन, इत्यादि।

(ए) व्यक्तिगत साहससे नही बल्कि राज्यकी ओरसे अथवा उसके नियंत्रणमे चलनेवाले उद्योगोंमे; जैसे, रेलगाड़ी, जहाज, महत्त्वकी खाने, मिट्टीके तेलके कुएं आदि।

५. जिस हदतक दूसरे प्रकारके यांत्रिक साधनोंवाले उद्योग आवश्यक समझे गये हो उस हदतक उनसे संबंध रखनेवाले कारखाने भी आवश्यक समझे जायंगे; जैसे, लोहा, औजार, मशीनें, कांच, बिजली इत्यादिके उद्योग और इनके लिए आवश्यक साधन बनानेके कारखाने।

१२

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार

१. जो चीजे अपने देशमें न बनती हों, बनानेके लिए प्राकृतिक अनुकूलताएं भी न हों, अथवा ऐसी हों कि बड़े कष्टसे या दूसरे राष्ट्र-की जनताकी भारी हिंसा करके ही उत्पन्न की जा सकती हों, जिन्हें बनाने-की कला वहांकी जनताने अतिशय परिश्रमसे हस्तगत की हो और उसकी कमाईपर उनका जीवन बहुत अधिक अवलंबित रहा हो, जिसका जीवनमे

इतने महत्त्वका उपयोग न हो कि उसके बिना करोड़ोंकी जीवन-यात्रा कठिन हो जाय, अथवा महत्त्वका उपयोग हो तो भी नित्यके जीवनमे उपयोग न हो और सामान्य मनुष्योंका जीवन तो उनके बिना ही चलता हो, ऐसी चीजोंका अंतर्राष्ट्रीय व्यापार हो सकता है।

२. ऐसे व्यापारके चलानेमें किसी भी तरहकी जोर-जबर्दस्ती, हिंसा, राजनीतिक अधिकारके दबाव वगैराका उपयोग न होना चाहिए।

३. ऊपर बतायी वस्तुओंको जैसे भी हो सके स्वदेशमें उत्पन्न करनेका आग्रह अधर्म भी हो सकता है।

४. प्रयोगशालाओंमें काम आनेवाले कितने ही साधन, एक्सरेका यंत्र, विशेष प्रकारकी घड़ियां, केसर, काश्मीरी ऊनी कपड़े, इलायची, दालचीनी इत्यादि विशेष प्रकारकी वनस्पतियां वगैरा चीजे इस प्रकारकी मानी जा सकती है।

खंड ७ :: उद्योग

१

खेती

१. खेती हिंदुस्तानका प्राणरूप धंधा है। भयंकर लूटके जारी रहते हुए भी हिंदुस्तान जो अबतक जीवित रहा है उसका कारण यही है कि भोजनके मामलेमें अभी वह परावलंबी नही बना है। पर यह स्वावलंबन भी अब खतरेमें नही है. यह नही कहा जा सकता।

२. हिंदुस्तानकी आर्थिक और राजकीय नीति खेतीके उद्योगको नष्ट कर रही है। उसके परिणाम-स्वरूप खेती आज कमाईका धंधा नही रह गयी है।

३. ब्रिटिश शासन-व्यवस्थामें मालगुजारीकी वसूली कानूनन् जमीनपर पहला बोझ है। स्वराज्यमें इसका उलटा होना चाहिए। यानी खेतीकी तरक्की राज्यपर पहला बोझ होना चाहिए और मालगुजारी वगैरा सारे कर इस तरह लगाये जाने और वसूल होने चाहिए कि खेतीको हानि न पहुंचे।

४. देशके लिए आवश्यक धान्यका संग्रह सदा रहे, स्वराज्यकी आर्थिक नीति इस तरह बनायी जानी चाहिए।

५. हिंदुस्तानमें फलवाले वृक्षोंके उत्पादनपर जितना ध्यान दिया जाना चाहिए उतना नहीं दिया गया है। इस ओर खास तौरसे ध्यान देना चाहिए।

६. खेतीकी तरक्कीके लिए गोचर भूमिकी सुविधा भी आवश्यक है। खेती तथा जंगल-विभागकी नीति ऐसी होनी चाहिए जिससे लोगोंको गाय-भैंस रखनेका प्रोत्साहन मिले और उनकी खुराकके लिए खास किस्मके चारेकी खेती भी होनी चाहिए।

७. खेतीकी भांति ही सब उद्योगोंके विषयमें उद्यमकी वर्तमान

दृष्टि ही भूलसे भरी हुई है। मालगुजारी, कर, कर्ज आदि चुकानेकी चिंता मनुष्यको न हो तो अपने श्रमसे वह जो चीजें निर्माण करता है उनमे यह दृष्टि न रखेगा कि क्या बेचकर वह अधिक-से-अधिक दाम पा सकेगा, बल्कि इस दृष्टिसे उद्यम करेगा कि उसे और उसके कुटुबको अथवा उसके ग्राम या समाजको किस चीजकी कितनी जरूरत होगी।

८. इस तरह उसकी पहली चिता यह होगी कि उसके पास अनाज और चारा यथेष्ट मात्रामें रहे; केवल ऊंचे भावोपर नजर रखकर रुई, तेलहन, तंबाकू आदिके ढेर पैदा करनेका प्रयास वह न करेगा।

९. ऊंचे दाम पानेके लोभसे होनेवाली 'व्यापारिक खेती' से अंतमे किसानको अधिक लाभ तो होता ही नही, एक ओरसे आया हुआ पैसा दूसरी ओरसे चला जाता है; पर इससे नैतिक हानि बहुत बड़ी होती है। यह विचार करनेकी कर्तव्य-बुद्धि ही नष्ट हो जाती है कि हम जो चीज उपजाते हैं उससे हमारे अपने तथा दूसरे देशोंकी जनताकी भी शारीरिक, मानसिक और नैतिक हानि कितनी होती है। तंबाकू, अफीम आदिकी खेती इसकी मिसाले है।

२

सहायक उद्योग

१. हिंदुस्तानमे खेतीके लिए बहुतेरे कुदरती खतरे है। उनसे बचते रहनेके उपाय करते रहनेपर भी बहुत अशोमे यह स्थिति रहेगी ही। दूसरे यह बारहमासी धंधा नही हो सकती। खेतीके मौसिममें भी इसमे एकसी मेहनत नही करनी पड़ती। खास-खास मौकोंपर इसमे बहुतसे आदमियोंकी जरूरत पड़ती है और बाकीके दिनोंमे मालिक और उसके घरके लोग भी बेकार रहते है। अतः हिंदुस्तानमें खेती और उद्योग एक दूसरेसे बिलकुल अलग नहीं किये जा सकते, बल्कि खेतीके साथ कोई भी दूसरा सहायक धंधा अवश्य होना चाहिए।

२. सहायक धंधेमें नीचे लिखी अनुकूलताएं होनी चाहिएं—

(अ) वह मुख्य धंधे मसलन् खेतीके अनुकूल पड़नेवाला होना चाहिए—उसके लिए खेती बिगाड़नी पड़े ऐसा नहीं होना चाहिए।

(आ) अतः यह धंधा ऐसा होना चाहिए कि मुख्य धंधेके लिए मेहनतकी जरूरत पड़ते बिना किसी नुकसानके समेट लिया जा सके अथवा उधर ध्यान दिये बिना उसका काम चलता रहे।

(इ) इसके सिवा इस धंधेका रूप नौकरीका नहीं बल्कि स्वतंत्र श्रमका होना चाहिए।

(ई) इन्हीं कारणोंसे उस धंधेमें यंत्र अथवा मालके लिए इतनी पूंजीकी आवश्यकता न होनी चाहिए कि वह निर्धन जनताके सामर्थ्यके बाहर हो।

(उ) वह ऐसा हो कि खेतके नजदीक ही अर्थात् अपने घर या गांवमें किया जा सके।

(ऊ) करोड़ों जनोंको उसे अपनानेकी सलाह देनी हो तो यह धंधा ऐसा होना चाहिए कि उसका माल आसानीसे खप जा सके, अर्थात् वह सार्वजनिक उपयोगकी वस्तु हो।

(ए) उसी तरह करोड़ोंकी दृष्टिसे इस धंधेकी व्यवस्था करनेके लिए यह भी आवश्यक है कि उसका प्रबंध झटपट, आसानीसे और थोड़े खर्चमें किया जा सकता हो।

(ऐ) फिर, करोड़ोंकी दृष्टिसे वह ऐसा भी होना चाहिए कि अपढ़, थोड़ी बुद्धिके, कमजोर, छोटे-बड़े सब तरहके मनुष्योंसे हो सके।

(ओ) तथापि वह ऐसा न होना चाहिए कि कारखानेकी तरह वह धंधा मनुष्यको—कामके बीचमें—जड़ यंत्रकी भांति, आनंदरहित और रसहीन बना दे और—कामके बाद—ऊब और थकान पैदा करदे।

३. इन सहायक उद्योगोंमें चरखा और गोपालन प्रधान हैं। ये दोनों धंधे प्राचीन कालसे खेतीके साथ ही जुड़े हुए हैं, और दीर्घकालीन अनुभवकी कसौटीपर कसे जा चुके हैं।

४. जैसे तार, डाक, रेल अखिल भारतीय विभाग समझे जाते हैं वैसे ही चरखे और गोपालनका महत्त्व अखिल भारतीय है। बड़े

पैमानेपर तथा अधिक-से-अधिक लोगोंको आसानी और सुभीतेसे काममें लगा सकनेवाले यही धंधे है।

५. इन दोनों धंधोंका विशेष विचार पृथक् प्रकरणोंमे होगा। पर गोपालनकी तुलनामें चरखेका महत्त्व इस दृष्टिसे अधिक है कि गोपालन-का धंधा थोड़ी-बहुत जमीन और पूंजीकी अपेक्षा रखता है, इसलिए वह अपनी निजकी जमीन रखनेवाले किसानका ही सहायक धंधा बन सकता है। पर उन लाखों लोगोंके उतना अनुकूल नही है जो केवल खेतीकी मजदूरीपर ही गुजर करते है। दूसरे गोपालन खेतीमे अलग स्वतंत्र धंधा भी हो सकता है और चरखा इन दोनोंके साथ चल सकता है। इसी तरह गोपालन और चरखा दोनो एक साथ भी किसानके सहायक धंधे हो सकते है।

६. चरखेपर जोर देनेमे, यह आशय नही है कि उसके सिवा दूसरा कोई सहायक धंधा न होना चाहिए। स्थानिक परिस्थिति अनुकूल हो और चरखेसे अधिक लाभजनक दूसरा सहायक धंधा वहां चल सकता हो तो चरखेके बदले या उसके अतिरिक्त उसके लिए भी जगह है। स्थानीय अधिकारियों और लोकल-जिला बोर्ड आदिका फर्ज है कि उसपर ध्यान देकर उसे बढ़ायें—फैलायें।

७. इस विषयमें मोटे हिसाब यह कहा जा सकता है कि जिस गांवमे जो कच्चा माल पैदा होता है उसे जमा करने, बेचने और काममे लाने योग्य बनानेकेलिए जिन क्रियाओंकी जरूरत हो वे क्रियाएं भी वहीं, अर्थात् कच्चा माल पैदा करनेवालेके यहां ही होनी चाहिए। जैसे, विदेश अथवा शहरमे धान नही जाता पर चावल जाता है और वहीं खाया जा सकता है। गेहूंके स्थानपर आटा भी बड़ी मात्रामें जाता है और उसकी बनी रोटी, बिस्कुट आदिकी खपत भी अच्छी है। गन्नेका गुड़ या शक्कर बना-कर ही काममें लायी जा सकती है। तेलहनका तेल ही इस्तेमाल हो सकता है; कपासका उपयोग कपड़ेके रूपमें ही होता है। चमड़ा कमाकर उससे बननेवाली तरह-तरहकी चीजें ही काममें आती है। इसलिए धान कूटने, आटा पीसने, रोटी-बिस्कुट, गुड़-शक्कर बनाने, तेल पेरने, कपड़ा बुनने

और चमार, मोची वगैराके धंधे देहातमें ही चलने चाहिए, और ये सभी धंधे किसान या ग्रामवासीके सहायक उद्योग हो सकते हैं। ऐसे दूसरे अनेक धंधे भी गिनाये जा सकते हैं।

८. ऐसे धंधे सहायक उद्योगके तौरपर चलें तो किसानको बहुत तरह-के लाभ हो सकते हैं; जैसे, धानकी भूसी, गेहूंका चोकर, ईखके छिलके और पत्ते, तेलहनकी खली, बिनौले, सूतका फुचड़ा वगैरा पशुओंके काम आ सकते हैं, उनकी खाद बन सकती है या उनसे दूसरे धंधे भी किये जा सकते हैं।

३

'सौ फीसदी स्वदेशी'

१. स्वदेशी मालको प्रोत्साहन देनेकी जरूरत है। स्वदेशी धर्मके पालनमें ही यह बात आ जाती है। पर स्वदेशी मालको प्रोत्साहन देनेके उद्देश्यसे जो आंदोलन चलाया जाय उसमें बहुत विवेकसे काम लेनेकी जरूरत होती है।

२. ऐसे विवेकके अभावमें स्वदेशीके नामसे एक प्रकारका पाखंड जाने-अनजाने चलता है, बहुतेरे कार्यकर्ताओंकी शक्ति व्यर्थ जाती है और आत्म-प्रतारणा होती है।

३. जिस चीजके प्रचारके लिए खास तौरसे सहायता करनेकी या जिसे विज्ञापनकी जरूरत नहीं है वैसी वस्तुके लिए सार्वजनिक कार्यकर्ताओंको प्रदर्शनी करनेकी आवश्यकता नहीं है; कारण यह कि इससे भाव ऊंचे हो जाते हैं और एक दूसरेके साथ स्पर्धा करनेवाले संपन्न व्यापारियोंमें अनिष्ट तनातनी बढ़ जाती है।

४. मसलन् कपड़े, शक्कर या चावलकी मिलोंको ऐसी सहायता-की जरूरत नहीं मानी जा सकती। यही न्याय बहुत अंशोंमें कागजकी देशी मिलों, तेलकी मिलों, विलायती दवाओंके देशी कारखानों, साबुनके कारखानों, चमड़ेके बड़े कारखानों वगैरापर घटित होता है।

५. इसका अर्थ यह नहीं कि विदेशी कपड़ा, चीनी, चावल, कागज तेल, दवाएं, साबुन, दंत-मंजन, ब्रश आदि इस्तेमाल करनेमे हर्ज नही है। विदेशी वस्तुओंके सामने टिकने की शक्ति उनमें न हो तो उन्हें पूरी-पूरी मदद मिलनी चाहिए, और जिन्हे ये चीजे इस्तेमाल करनी ही हो उन्हें इन्हींको तरजीह देना चाहिए।

६. पर जिनके लिए आज स्वदेशी-आदोलनकी जरूरत है वे ये वस्तुएं नहीं हैं। जरूरत तो आज ग्राम-उद्योगोका संरक्षण करनेकी है, अर्थात् खादी, गुड़, देहाती शक्कर, हाथकुटा चावल, देहाती कागज, बैलके कोल्हू-का तेल, देहाती मसाले, रीठा, सिक्का, दतौन, देहाती झाड़ू, चटाई, टोकरिया, रस्सी, जाजिम, चमड़ेकी चीजें आदि देहातके सैकड़ो उद्योग जो प्रोत्साहनके अभावमे मर गये या मृतवत् जीवित है उनका संजीवन करने की।

७. इस बारेमे शहरातियों और पढ़े-लिखोंने देहातके प्रति अक्षम्य लापरवाही दिखाई है।

८. कुछ साल पहले देहातके लोग अपने रोजमर्राके इस्तेमालकी चीजें तो खुद बना लेते ही थे, छोटे कस्बोंके रहनेवाले भी अपने रोजके कामकी बहुतसी चीजोंके लिए उनके ही मुहताज थे। इसके बदले वे अब वे चीजें शहरों या विदेशोंसे मंगाते है, और जो धंधे देहातवालोंके बाप-दादा पुश्त-दर-पुश्तसे करते आते थे वे बद हो गये है। पर शहरातियो और पढ़े-लिखे लोगोंने इसके बारेमे कुछ सोचा ही नही।

९. अतः आजका देहाती कगाली, परावलबन और अहदीपनका शिकार हो गया है। उसमे पचास साल पहलेके देहातीकी आधी भी बुद्धि या जानकारी नही रही। देहाती कारीगर भी देहातके और सब लोगोंकी तरह अबुद्धि और अनाड़ी बन गया है।

१०. ग्रामवासी जिस क्षण अपनी फुर्सतका अधिकाश समय कोई उप-योगी काम करनेमें लगानेका निश्चय करेंगे और नगरवासी देहातकी बनी चीजें काममे लानेका संकल्प करेंगे उसी क्षण देहाती और शहरातीका जो संबंध आज टूट गया है वह फिर जुड़ जायगा।

११. इस काममें देशभक्तोंकी एक बड़ी सेना खप सकती है। जितने स्वदेशी-संघ आज काम कर रहे हैं उन सबके और दूसरोंके लिए भी लंबा-चौड़ा मैदान खाली पड़ा है। इसके लिए अगणित उद्योगोंके विषयमें पक्की जानकारी प्राप्त करना, बहुतोंके बारेमें खोज करना और अनेक प्रकारके कारीगरोंकी भलाईमें दिलचस्पी लेना जरूरी है। इससे उन बहुसंख्यक लोगोंको ईमानदारी और इज्जतका काम करके गुजर करनेका जरीया मिल जायगा जो आज बिना धंधेके भूखों मर रहे हैं।

१२. यह सच्ची, सफल और 'सौ फीसदी' स्वदेशी है।

४

विशेष उद्योग

१. समाजका निर्वाह और उसकी समृद्धि तथा उन्नति अच्छी तरह होनेके लिए खेती और वस्त्रके उद्योगोंके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके उद्योगोंकी जरूरत पड़ती है—जैसे, धातु, कोयले, मिट्टीका तेल इत्यादिकी खानों तथा खनिज पदार्थोंसे संबंध रखनेवाले; नमक, मछली इत्यादि सामुद्रिक पदार्थोंसे संबंध रखनेवाले; लकड़ी, लाख, रबर, जड़ी-बूटिया इत्यादि जंगली पदार्थोंसे संबंध रखनेवाले।

२. ये धधे जीवन-निर्वाहके लिए खेती और वस्त्र जितने अनिवार्य नहीं हैं, फिर भी आजके सामाजिक जीवनमें इन उद्योगोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

३. इन उद्योगोंमें जनताका बड़ा भाग नहीं लगता, तथापि इनसे उत्पन्न होनेवाली वस्तुओंकी हर एकको जरूरत पड़ती है; इसलिए इनके उपयोगकी दृष्टिसे इन उद्योगोंमें समस्त जनताका स्वार्थ है।

४. ऐसे उद्योग सारे देशमें नहीं चलते बल्कि स्थानिक ही होते हैं।

५. इनमें मछली पकड़ने और नमक बनानेके धंधे खेती और चरखेके दरजेके हैं। उनके संबंधमें आर्थिक नीति वैसी ही होनी चाहिए जैसी खेती या चरखेके विषयमें हो। जैसे सूत कातना हरएक किसानका हक है

वैसे ही नमक बनाना प्रत्येक समुद्र-तटवासी जनताका अधिकार समझा जाना चाहिए।

६. ऊपर बताये दूसरे धंधोंमें बहुत करके बड़ी पूंजी, विशेषज्ञता, कुशल व्यवस्था, बड़े पैमाने इत्यादिकी आवश्यकता होती है। ऐसे धंधे चाहे व्यक्तिगत साहससे चलें या राज्यकी सीधी देख-रेखमें, इनपर राज्यका नीचे लिखे अनुसार नियंत्रण होना चाहिए——

(अ) इनमें बननेवाले सार्वजनिक उपयोगके पदार्थोंका उपभोग सस्ते-से-सस्ते दामोंमें जनताको मिलना चाहिए।

(आ) ये चीजें अच्छी-से-अच्छी बनावटकी और टिकाऊ होनी चाहिए।

(इ) ये धंधे व्यक्तिगत साहससे चलते हों तो इनके मुनाफे और कीमतपर राज्यका नियंत्रण होना चाहिए।

(ई) इनमें काम करनेवाले मजदूरोंकी सुख-सुविधाकी राज्यको खास तौरसे चिंता रखनी चाहिए।

(उ) इनमेंसे जो धंधे छोटे पैमानेपर और थोड़ी पूंजीसे तथा गृह-उद्योगके रूपमें चल सकते हों उन्हें विशाल उद्योगका रूप देते समय ऐसी मर्यादा रखनी चाहिए कि उनके बड़े-बड़े कल-कारखाने उनके गृह-उद्योगोंका नाश करनेवाले न हों। गृह-उद्योगोंमें बन सकनेवाली चीजोंकी बड़े कारखानोंमें बनानेकी मनाही होनी चाहिए।

७. कपड़ेके कारखाने भी, जबतक जारी रहें, इसी नियमके अधीन होने चाहिए।

५

हानिकारक उद्योग

१. शराब, ताड़ी, अफीम, भांग, गांजा, तम्बाकू, गोला-बारूद, अस्त्र शस्त्र आदिके जैसे जनताकी नीति और आरोग्यका नाश करनेवाले उद्योग राज्यको व्यक्तिगत-रूपमें नहीं चलने देने चाहिए, अथवा कड़ा नियंत्रण रखकर ही चलने देने चाहिए।

२. उन्हें चलानेमें राज्यकी नीति उनसे पैसा पैदा करनेकी नही, बल्कि दवा-इलाज अथवा दूसरे प्रयोजनोंके लिए उन पदार्थोकी जितनी आवश्यकता हो उतने ही परिमाणमें उनकी उत्पत्ति करने और उन्हे लोगोंतक पहुंचानेकी दृष्टि रखनेवाली होनी चाहिए।

३. ऐसी चीजोंका देसावरी व्यापार परदेशी राज्योंकी इच्छाके अधीन रहकर ही चलने देना चाहिए।

६

उपयोगी धंधे

१. सामाजिक जीवनमें उद्योगोंके अतिरिक्त दूसरे भी कितने ही उपयोगी काम करनेवालोंकी जरूरत पड़ती है––जैसे, शिक्षक, सिपाही, वकील, न्यायाधीश, अधिकारी, डाक्टर, दुकानदार, सफैये (भंगी आदि), क्लर्क इत्यादि।

२. इन पेशोंके लोग प्रत्यक्ष रूपसे कोई उपभोग्य पदार्थ उत्पन्न नही करते, पर अप्रत्यक्ष रूपसे पदार्थोकी उत्पत्ति तथा उपभोगमें और साथ ही अनर्थकारी पदार्थोके नाश-निकासकी समुचित व्यवस्था करनेमें उनकी जरूरत पड़ती है।

३. इन पेशेवरोंके गुजारेका समाजपर जो बोझ पड़ता है उसे व्यवस्था-खर्च कह सकते है। इसलिए इन पेशेवरोंकी संख्या और इनपर होनेवाला व्यवस्था-खर्च जनताकी संख्या और समृद्धिके लिहाजसे सीमित होना चाहिए।

४. ये पेशे सेवावृत्तिसे होने चाहिए, पैसा कमाने या धनी होनेकी वृत्ति से नही। अतः एक ओर तो ये धंधे करनेवालोंको समाजकी स्थिति और समृद्धिकी मर्यादाके अनुसार इतना नियत पारिश्रमिक देकर निश्चित कर देना चाहिए जिससे उनका जीवन-निर्वाह हो सके, दूसरी ओर उन्हें उतनेपर संतोष मानना चाहिए और इस प्रकार मिलनेवाले मेहनतानेके अलावा दूसरी आमदनी न करनी चाहिए तथा अपनेमें जो कुशलता हो उसका समाजको अधिक-से-अधिक लाभ पहुंचाना चाहिए।

५. ऐसी मर्यादामें रहकर यदि ये पेशे किये जाय तो ये समाजके सर्वोदयमें सहायक होंगे और इन पेशोंमें आनेके लिए लोगोंमें अयुक्त लालसा तथा उसकी पूर्तिके लिए कुटिल उपायोंके अवलंबनकी आवश्यकता न रहेगी।

६. जिन्हें धन बटोरना है, जमीन, घर, गहने चाहिए, जिन्हें अपना विस्तार बढ़ाना है, उनके लिए उद्योग ही आकर्षक द्वार होना चाहिए, और उद्योगोंमें इनके लिए गुंजाइश भी होनी चाहिए। इस प्रकरणमें बताये हुए धंधोंकी आमदनी या मुनाफेकी सीमा ऐसी होनी चाहिए कि वे इस प्रवृत्तिके लोगोंको अनुकूल न प्रतीत हो।

७. इसके विपरीत जिन्हें सीमित पर स्थिर और निश्चित जीविका प्राप्त करनी और सेवा करनी है उनके लिए इन धंधोंका द्वार खुला रहना चाहिए। अतः इन धंधोमें प्रवेश करनेके लिए उन पेशोंकी आवश्यक योग्यताके सिवा चरित्र भी ऊंचे दरजेका होना चाहिए।

७

ललित कलाएं

१. संगीत, कथा-वार्त्ता, चित्रकला, नृत्य, नाटक, सिनेमा आदि ललित-कलाएं यदि उचित सीमामें रहें तो वे जन-समाजके निर्दोष मनोरजन, ज्ञान-प्राप्ति तथा भावना-विकासके साधन हो सकती हैं; मर्यादाके बाहर चली जायं तो शराब, अफीम—जैसे हानिकर व्यसन बन जाती हैं।

२. आमतौर पर ऐसी कलाओंको जीविकाका धंधा न बनाना चाहिए, बल्कि हरएक आदमीको इतनी शिक्षा मिलनी चाहिए कि अपनी जीविका-के धंधेके अतिरिक्त ऐसी किसी कलामें भी दिलचस्पी ले सके।

३. इस कारण जनताके मनोरंजन आदि के लिए ऐसी कलाओंके प्रद-र्शन या जलसोंकी व्यवस्था लोगोंको अपने उत्साहसे ही और गैर-पेशेवर मंडलियां बनाकर करनी चाहिए।

४. ऐसी कलाओंका शौक अमर्याद, अनीतिकी ओर ले जानेवाला

तथा हानिकर न हो जाय, इसके लिए ऐसे प्रदर्शनों और जल्सोंपर नियंत्रण और देख-रेख रहनी चाहिए।

५. ये नियम सामान्य नीति बताते हैं। पर संभव है कि इन कलाओंके द्वारा जीविका-उपार्जन करनेकी मनाही करना व्यावहारिक और हितकर न हो। इसलिए जहां उनमें सामर्थ्य हो वहां ग्राम-पंचायतोंको इसे अपना एक फर्ज मानना चाहिए कि ऐसी कलाओंका निर्दोष, ज्ञानप्रद और सद्भाव-पोषक उपभोग लोगोंको मिल सकनेकी व्यवस्था करें और इसके लिए पिछले प्रकरणमें उपयोगी धंधोंके संबंधमें बताये अनुसार अपनी आर्थिक स्थितिकी मर्यादामें रहकर ऐसे पेशेवरोंकी निश्चित वृत्ति बांध दें, तथा चरित्रवान् कलाविद प्राप्त करें।

६. जो लोग स्वतंत्रतापूर्वक ऐसे धंधे करना चाहते हैं उनपर नीति-का नियमन होना चाहिए और अनुमति, विशेषकर इत्यादिके बंधन भी लगाये जा सकते हैं।

७. ऐसी कलाओंकी उचित पुष्टि और वृद्धिके लिए राज्यकी ओरसे, सुविधा देखकर, उनके विशेषज्ञोंको प्रोत्साहन दिया जा सकता है। इसमें तारतम्यका भंग न होता हो तो वैसा करना उचित होगा।

८. हरेक कारीगर जो अपने धंधेमें कलावृत्ति दिखायें, प्रोत्साहन देनेयोग्य समझा जाय, और कलाकी इस तरहसे उन्नति करनेकी ओर राज्यको प्रथम ध्यान देना चाहिए।

खंड ८ :: गोपालन

१

धार्मिक दृष्टि

१. हिंदू-धर्ममें गोपालनको धार्मिक महत्त्व दिया गया है और गो-वध महापाप माना गया है तथा गोरक्षा राजाओं और वैश्योंका एक विशेष कर्तव्य बताया गया है। इसलिए इस कार्यके निमित्त लाखों रुपये दान किये जाते हैं। पर यह सब होते हुए भी, उचित दृष्टिके अभावसे, हिंदुस्तानके पशुओंकी दशा गो-भक्षक देशोंसे भी अधिक दयनीय है।

२. गोपालन-संबंधी धार्मिक दृष्टिमें नीचे लिखे अनुसार विकास होनेकी आवश्यकता है—

(अ) अपंग और निर्बल पशुओंका पालन करना मात्र गोपालनका क्षेत्र नहीं है; गाय और बैलोंकी नस्ल सुधारना, गायको अधिक सत्त्व-वाली और अधिक दूध देनेवाली बनाना तथा बैलकी किस्म सुधारना भी गोपालन-धर्ममें सम्मिलित है।

(आ) अतः पींजरापोल ऐसी आदर्श गोशालाएं होने चाहिए जो लोगोंको गोपालनका पदार्थ-पाठ दे सकें—उसका प्रत्यक्ष उदाहरण बन सकें। गायोंके रखने-खिलानेके स्थान, उन्हें घास, दाना आदि देनेके तरीके और नतीजोंका लेखा रखनेमें शास्त्रीय सावधानता और शास्त्रीय विधिसे काम करनेका अभ्यास प्रकट होना चाहिए।

(इ) पींजरापोलोंको इस दृष्टिसे अच्छे सांड पालने चाहिए कि पशुओंकी नसल सुधारनेमें गांवके लोग उनका उपयोग कर सकें।

(ई) पींजरापोलोंमें चर्मालय-विभाग भी होना चाहिए, और मरे ढोरों-के हाड़-मांस तथा चमड़ेके धंधेके प्रति घृणा-दृष्टि रखनेके बदले कर्तव्य-दृष्टि होनी चाहिए। यह समझ लेना चाहिए कि जो मालिक मरे पशुओंके

हाड़-मास और चमड़ेका उपयोग* नहीं होने देता वह उनकी हत्याको उत्तेजन देता है, इसलिए जीवदया-धर्मीको उचित है कि वह मरे पशुओंके ही हाड़-मांस और चमड़ेका सदुपयोग करनेका आग्रह रक्खे।

(उ) जीवित पशुको अपेक्षा कत्ल किये गये पशुका अधिक मूल्यवान् माना जाना धार्मिक दृष्टिसे भयानक है, यह सोचकर जीवित पशुओंका आर्थिक महत्त्व बढ़ानेका यत्न करना धार्मिक कर्तव्य समझा जाना चाहिए।

(ऊ) बैलको बधिया करना अनिवार्य है, यह मानकर बधिया करनेकी क्लेश-रहित शास्त्रीय विधि जान लेनी और पींजरापोलोंमें उससे काम लेना चाहिए।

(ए) जब प्राणीको ऐसा कष्ट होता हो कि उसके अपंग होकर भी बचनेकी आशा न हो, वह केवल यंत्रणा भोगनेके लिए ही जी रहा हो, तो उसके प्राणत्यागका दुःखहीन उपाय कर देना दया-धर्म है, इस विचारको स्वीकार कर लेना चाहिए।

•

२

अन्य प्राणियोंका पालन

१. गो शब्दमें सामान्यतः समस्त प्राणियोंका समावेश होता है यह सही है; फिर भी उसके व्यवहारमें——अहिंसाकी दृष्टिसे भी——थोड़ा विवेक करनेकी आवश्यकता है। बिना विवेक किये प्राणियोंका पालन परिणाममें हिंसा ही बढ़ाता है।

२. ऐसे विवेकके अभावमें भैंसके दूध-घीका उपयोग गाय और भैंस दोनोंकी हिंसा बढ़ानेवाला साबित हुआ है। कारण——

(क) भैंस ठंढक और पानीमें रहनेवाला प्राणी है। उसे गर्मी और सूखे प्रदेशोंमें रखना उसके साथ क्रूरता करना है।

***हाड़-मांसके उपयोगके मानी कोई 'खानेके लिए' न समझे। मतलब उनकी खाद तथा दूसरी उपयोगी चीजें बनानेसे है। ——लेखक**

(ख) पशुओंका कोई उपयोग न हो सकनेसे उनका वध होता है।

(ग) बैलके लिए गायका और दूधके लिए भैंसका पालन होनेके कारण भैंसकी तरह गायका पालन लाभदायक नहीं होता; इससे गाय-को अधिक दुधार बनानेका प्रयत्न नहीं होता और उसके कत्लको उत्तेजन मिलता है।

३. इस कारण भैंसका घी-दूध त्यागकर उसका पालना बंद कर देना उचित है। इसका अर्थ भैंसोंको कत्ल कराना नहीं है बल्कि उनकी बाढ़ रोकना है।

४. इसी तरह विवेकसे विचार करनेपर गलियोंमें भटकनेवाले कुत्तों को खिलाना गलत धर्म साबित होगा। जो लोग कुत्तोंके शौकीन हों उन्हें चाहिए कि उन्हें ठीक तरीकेसे पालें और उनकी सब तरहसे खोज-फिक्र रक्खें। पर गली-गली भटकनेवाले कुत्तोंको खिलाकर उन्हें बढ़ने देना उनको यंत्रणा देना है। इससे उनकी जातीय अधोगति होती है, दूसरे लोगोंको असुविधा होती है और उनके पागल हो जानेका भय रहता है।

५. बंदर, कबूतर, चींटी इत्यादि जीवोंको खिलानेका धर्म तो इससे भी अधिक भूल-भरा है। जिन प्राणियोंका जीवन मनुष्योंपर अवलंबित नहीं और जिनका मनुष्यके लिए कोई उपयोग नहीं उन्हें पोसना नासमझी है। इससे अंतमें अपनी कठिनाइयां और इन प्राणियोंकी हिंसा दोनों बढ़ती है।

६. जो लोग जैन अथवा वैष्णवोंमें प्रचलित प्राणियोंके प्रति अहिंसा-धर्मकी दृष्टिको नहीं मानते उनके द्वारा, पूर्वोक्त उपद्रवोंके कारण, ऐसे प्राणियोंका बारंबार वध होना अचरजकी बात नहीं है। ऐसे प्राणीके-वधके लिए उन्हें खिलाना धर्म समझनेवाला वर्ग ही अधिकांशमें जिम्मेदार है इसलिए वैसे अवसरोंपर उसका क्रोध करना बेमौका है।

३

प्राणियोंके प्रति क्रूरता

१. प्राणियोंको एक झटकेमें काट डालनेकी अपेक्षा उनके प्रति क्रूरता का व्यवहार करनेमें कम हिंसा नहीं है। ऐसी हिंसा हिंदुओंमें खूब होती है।

२. फूका लगाना, काटेदार पैनेसे कोंचना, हदसे ज्यादा बोझा लादना, पेटभर खाना न देना, पूछ मरोड़ना, इधर-उधर भटककर पेट भरनेके लिए छोड़ देना, घायल या पीडित अंगोंका इलाज-सम्हाल न करना, बेकाम हो जानेपर घरसे निकाल देना, कुटावकर बधिया करना आदि तरीके अमानुषी और क्रूर हैं।

३. इसके फलस्वरूप हिंदुस्तानके गाय, बैल, घोड़े, गधे, बिल्ली इत्यादि सभी प्राणी इस हालतमें जीते हैं कि देखकर रोंगटे खड़े हो जायं।

४

गोवध

१. हिंदुओंकी धार्मिक दृष्टिके संतोषार्थ ही नहीं, हिंदुस्तानकी आर्थिक दृष्टिसे भी गोवधकी मनाही होनी चाहिए।

२. पर ऐसा होनेतक हिंदुओंको धीरज रखकर, समझा-बुझाकर और सेवासे उसे रोकनेका यत्न करना चाहिए।

३. गोवध रोकनेके लिए मनुष्य (मुसलमान) का वध करना अधर्म है।

४. गायकी कुरबानी फर्ज नहीं है, यह समझकर मुसलमान गाय-की कुरबानी बंद कर दें तो यह उनका परम सत्कृत्य समझा जायगा। इससे दूसरे नंबरका सुकृत्य यह होगा कि यह काम वे ऐसे खानगी तौर-पर करें कि हिंदुओंका दिल न दुखे।

५. जो इस तरह खुले-खजाने गावकुशी करता है कि हिंदुओंके दिलोंको चोट पहुंचे या गायका जुलूस निकालता है वह धर्म-कार्य नहीं करता। ऐसे आचरणकी मनाही होनी चाहिए।

६. त्योहारके दिन गायकी कुरबानी करनेवाले मुसलमानकी बनिस्बत खानेके लिए रोज गायोंको कत्ल करवानेवाला अंग्रेजी राज्य हिंदुओंका और साथ ही हिंदुस्तानका अधिक द्रोह करता है।

५

मरे ढोर

१. अपना पालतू पशु मर जानेपर उसके हाड़-मांस और चमड़े को काममे लानेके विचारमें अनुदारता है, कुछ लोगोंकी यह धारणा बन गयी है। इससे या तो उस पशुके किसी भी अंगका कोई उपयोग नहीं किया जाता या ढेढ—चमार उसका गलत तरीकेपर अथवा अधूरा उपयोग करते हैं। वे उसका मांस खाते हैं, उसे घसीटते हुए ले जाते और उसका चमड़ा खराब करके उतारते हैं। हड्डियां भी बेकार पड़ी रहती हैं।

२ यह खयाल छोड़नेकी जरूरत है। अपने पशुको जीतेजी अच्छी तरह पालना और मरनेपर मानपूर्वक उसे उठवाकर उचित स्थानपर पहुंचा देना चाहिए। यह प्राणी मरनेके बाद भी अनुपयोगी नहीं होता, यह सोचकर जीवित रहते उसके साथ दयाका व्यवहार करनेकी जरूरत है और जिस प्रकार जीवित रहते उसका उपकार ग्रहण किया उसी प्रकार मरनेके बाद भी उसके शरीरका कृतज्ञ-बुद्धिसे उपयोग करनेमें बुराई नहीं है।

३. मरे ढोरका उपयोग न किया जाय तो आर्थिक दृष्टिसे वह महंगा ही पड़ता है। नतीजा यह होता है कि गाय-भैंस पालना लोगों से चलता नहीं और संपूर्ण गोपालन-धर्म छूट जाता है।

४. मरे ढोरको घसीटकर ले जानेका रिवाज बुरा है। इससे चमड़ा घिस जाता है और चमड़ेकी कीमत घट जाती है। उसे या तो उठाकर या गाड़ीमें लादकर ले जाना चाहिए।

५. उसका चमड़ा ठीक तरहसे उतारकर, हड्डी-मांस इत्यादिकी खाद बनाकर उपयोग करना चाहिए। उसकी आंतोंसे भी कामकी चीजें बनती हैं।

६. इस धंधेमें फैलावकी बहुत गुंजाइश है। अतः पढ़े-लिखे लोगोंको इसकी विद्या सीख लेना जरूरी है।

खंड ६ :: खादी

१

चरखेके गुण

१. सहायक धधेके रूपमें चरखेमें जो गुण है वे दूसरे किसी उद्योगमें नही है। संक्षेपमें वे इस प्रकार है--

(अ) यह सुसाध्य है, तत्काल-साध्य है; क्योंकि --

(१) इसमें किसी बड़े आले-औजारकी जरूरत नहीं होती। रुई घरकी और औजार भी घरेलू।

(२) इसमें न बहुत बुद्धिकी आवश्यकता है न बहुत कुशलताकी। अपढ़-गवार किसान भी इसे आसानीसे कर सकता है।

(३) इसमें भारी मेहनतकी भी जरूरत नहीं। स्त्रियां कातें, लड़के कातें, बूढे कातें, बीमार कातें; और

(४) यह परीक्षामें पास हो चुका है।

(आ) कतैयेको घर बैठे धंधा मिलता है, हमेशा उसका सूत बिक सकता है, और गरीबके घर हमेशा दो पैसेकी वृद्धि होती है।

(इ) बारिशकी भी इसे गरज नही है; सूखेमें भूखेका बेली बन जाता है।

(ई) न इसमें कोई धार्मिक रुकावट, और न ऐसा धधा कि लोगोंको रुचे नहीं।

(उ) लोगोंको घर बैठे काम मिलता है, इसलिए मिलके मजदूरोंको जो खेती और घर-बार छोड़कर भागना पड़ता है, उनका कुटुंब छिन्न-भिन्न हो जाता है, वह डर इसमें नही है।

(ऊ) इस कारण हिंदुस्तानकी ग्राम-पचायतें जो आज मृतप्राय हो गयी है उनके उद्धारकी आशा इसमें समायी हुई है।

(ए) किसानकी तरह बुनकरका भी काम इसके बिना नहीं चल

सकता। जो बुनकर आज हिंदुस्तानकी एक-तिहाई आवश्यकता पूरी करने भर कपड़ा बुनते हैं वे किसी दिन चरखेके अभावमें बरबाद हुए बिना न रहेंगे।

(ऐ) इसका उद्धार हुआ कि हजार धधोका उद्धार हो जायगा। बढ़ई, लुहार, धुनिये, रंगरेज——सबमें फिर प्राण आ जायगा।

(ओ) यही एक ऐसी चीज है जिससे धनके असमान विभाजनमें समानता आ सकती है।

(औ) इसीसे बेकारी जायगी। किसानको फुरसतके वक्त काम मिलेगा इतना ही नही, आज जो पढ़े-लिखोंके दल-के-दल काम बिना भटकते है उन्हें भी पूरा काम मिल जायगा। इस धंधेके पुनरुद्धारका कार्य इतना बड़ा है कि प्रबंध और संचालनके काममें हजारों पढ़े-लिखोंकी खपत हो जाय।

२. इसके उपरांत चरखा जहां फिरसे दाखिल हुआ है वहां उसके द्वारा हुए अवांतर लाभ भी इसकी गुण-गणनामें लिये जा सकते हैं। वे इस प्रकार हैं——

(अ) चरखेने कितने ही लोगोंके जीवन और हृदयको बदल दिया है।

(आ) चरखेकी बदौलत शराबखोरी घटने लगी है और किसान कर्जसे छुटकारा पाने लगे है।

३. अकालमे संकट-निवारणके कामोंमे चरखा सफल साबित हुआ है।

२

चरखेके संबंधमें खास खयाल

१. चरखेके विषयमें अनेक टीकाएं होती है, उनकी जड़मे है चरखेके संबंधमे अनेक गलत धारणाएं। वे धारणाएं क्या हैं यह नीचेके उत्तरोंसे मालूम हो जायगा।

२. चरखा मिलोंकी प्रतिद्वंद्विता नहीं करता; कर सकता भी नही पर मिलें चरखेसे स्पर्धा करती हैं, और उस हदतक वे बंद कराने योग्य हैं

३. जिस सशक्त मनुष्यको अपनी पूरी शक्ति और अपने पूरे समय-का उपयोग करने भरको काम मिल जाता है उसे वह काम करनेसे रोकना चरखेका उद्देश्य नही है।

४. चरखा कुल मिलाकर देशके धनकी अवश्य वृद्धि करता है, और पूरी मजदूरी दी जाय तो चलानेवालेका गुजर करा सकता है। पर चरखे-से कोई धनवान होनेकी आशा रक्खे तो पछतायेगा। यह चरखेका दोष नही बल्कि गुण है क्योंकि इससे धनका समान बटवारा अपने आप ही हो जाता है।

५. हिदुस्तानके किसानोका आज खेतीसे बचनेवाला छः महीनेका समय निरर्थक जाता है जिसके परिणामस्वरूप बेकारी और गरीबीका टेढ़ा प्रश्न उपस्थित होता है। इस प्रश्नका तात्कालिक, व्यावहारिक और स्थायी इलाज चरखा है, इतना अवश्य चरखावादियोंका दावा है।

६. चरखेसे आमदनी भले ही फूटी कौड़ीके बराबर ही होती हो, पर किसानका तो आधा साल बेकार जाता है जिसमे उसे फूटी कौड़ीकी भी आमदनी नही होती और उसे बेकारीका रोग लग जाता है। इन दो बातोंके लिए हिंदुस्तानके अर्थशास्त्रमे चरखेका महत्त्वपूर्ण स्थान है।

७. ऊपर जो यह कहा गया है कि चरखेसे बेकारोंको नामकी ही सही पर कुछ आमदनी तो हो सकती है वह आत्म-संतोषके लिए नही बल्कि चरखेकी उपयोगिता सिद्ध करनेके लिए कहा गया है। सच पूछिए तो क्या चरखेकी, क्या किसी दूसरे श्रमकी मजदूरी नहीके बराबर रहे, यह संतोषजनक स्थिति नही। इस सबधमे अधिक विचार 'स्वावलंबी और व्यापारी खादी'मे किया गया है।

३

खादी और मिलका कपड़ा

१. खादी और मिलमें प्रतिद्वंद्विता नही समझनी चाहिए, और ठीक हिसाब लगाया जाय तो है भी नही।

२. चरखा करोड़ोंका गृह-उद्योग और जीवनका आधार है! मिलका उद्योग अगर इस तरह चलाया और चलने दिया जाय कि चरखेका नाश हो जाय तो उसे चलाने और चलने देनेवाले जन-हितका विचार नहीं करते।

३. इसलिए यदि मिलें रहें तो उनका क्षेत्र चरखेके क्षेत्रसे बाहर रहना चाहिए। अर्थात् करोड़ों लोग जिस तरहका सूत कात और बुन सकते हैं वैसा सूत और कपड़ा बनानेकी मिलोंको मनाही होनी चाहिए।

४. व्यक्तिगत नहीं बल्कि राष्ट्रीय अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे विचार करें तो किसी भी वस्तुकी लागत कीमत आंकनेमें सिर्फ उसके उत्पादकके माल, पूंजी और मजदूरीमें लगे हुए खर्चका ही विचार नहीं करना चाहिए, बल्कि इस रीतिसे वह चीज बनानेसे अगर बेकारोंकी तादाद बढ़ती है तो उन बेकारोंके खाना-खुराकका खर्च जनताके सिर पड़ता है इसलिए उस खर्चको भी इस वस्तुकी तैयारीपर पड़ा समझना चाहिए। इस दृष्टिसे देखनेपर खादीकी अपेक्षा मिलें देशको महंगी पड़ती जान पड़ेंगी।*

---

* इस विचारको समझनेमें श्रीग्रेगकी पुस्तकसे लिया गया नीचे लिखा हिसाब उपयोगी होगा——हाथ-कताई और हाथ-बुनाईके द्वारा एक आदमी जितना सूत कातता और कपड़ा बुनता है उससे मिलमें (१९२६ ई० के हिसाबके अनुसार) कताई आदमी पीछे फी घंटा २०३ से २३६ गुना तक और बुनाई २० गुना अधिक होती है। अर्थात् दोनों बराबर-बराबर घंटे काम करें तो सूतकी मिलका मजदूर २०० से अधिक कतैयोंको और मिलका बुनकर २० हाथ-बुनकरोंको बेकार बनाता है। ऐसे बेकारोंका पौना भाग या समय दूसरे धंधोंमें लगता है। इतनी उदारतासे हिसाब करें तो भी २६७॥ लाख मनुष्योंकी तीन आने रोजकी मजदूरीका नुकसान होता है। इनके निर्वाहका खर्च यदि विदेशी और स्वदेशी मिलोंके कपड़ों-पर रक्खा जाय तो फी गज पौने दो आना, और सिर्फ विदेशी कपड़ेपर रक्खें तो छः आना दो पाई कीमत उस कपड़ेकी बढ़ जाय।

यदि राष्ट्रीय सरकार इन बेकारोंका निर्वाह-खर्च कपड़ेकी मिलोंसे प्रत्यक्ष करके रूपमें वसूल करे तो स्पष्ट हो जाय कि मिलका कपड़ा

५. राज्यव्यवस्था साधारण जनताका हित देखनेवाली हो तो बेकारी दूर करनेका पक्का बंदोबस्त किये बिना मिलको खादीके साथ प्रतिस्पर्द्धा करने ही न देगी ।

६. ऐसी व्यवस्थाके अभावमें जनताको ही गरीबोंके प्रति सहानुभूतिसे प्रेरित होकर मिलका यह धंधा रोकना चाहिए ।

७. मिलकी हानिकारक प्रतिस्पर्द्धाको रोकनेके अहिंसात्मक उपाय ये हैं—विदेशी वस्त्र तथा खादीके क्षेत्रमें उतरनेवाली देशी मिलोंका बहिष्कार और धरना, खादी पहननेकी प्रतिज्ञा, खादीके लिए दान तथा यज्ञार्थ कताई ।

४

चरखा और हाथ-करघा

१. चरखेके बदले सिर्फ हाथ-बुनाईके धंधेको उत्तेजन देना, और मिलके सूतका नहीं, केवल मिलकी बुनाई भरका बहिष्कार करना चाहिए—यह सुझाव चरखेके बारेमें लोगोंमें जो गलतफहमी है उससे पैदा होता है । कारण यह कि—

२. हाथ-कताईका उद्योग जिस प्रकार सार्वत्रिक हो सकता है उस प्रकार हाथ-बुनाईके उद्योगके सार्वत्रिक होनेकी संभावना नहीं है ।*

सस्ता नहीं है । आज इस खर्चको जनता परोक्ष रीतिसे देती है, इस कारण कपड़ेके बाजार-भावमें वह दिखाई नहीं देता । अधिक विस्तृत चर्चा-के लिए पाठकोंको श्रीग्रेगकी पुस्तक पढ़नी चाहिए । —कि० घ० म०

इसका हिंदी अनुवाद 'खद्दरका संपत्ति-शास्त्र'के नामसे सस्ता-साहित्य-मंडलसे प्रकाशित हुआ है । —अनुवादक

* पिछली गणनाके अनुसार भारतको रोज दो करोड़ गज कपड़ेकी आवश्यकता होती है । (यह कुल कपड़ा हाथ-करघेपर बुनाया जाय तो भी) इसमें अधिक-से-अधिक रोज दो घंटा काम करनेवाले एकाध करोड़

३. चरखा सह-उद्योग ही हो सकता है और बुनाई स्वतंत्र उद्योगके रूपमें ही चल सकती है, यह बात उक्त सलाह देने वालोंके ध्यानमें नहीं आयी।

४. अगर कानूनके द्वारा मिलकी बुनाई बंद न हो बल्कि जनताके प्रयत्नसे ही उसका बहिष्कार करना पड़े तो बुनकरोंको मिलोंकी दया पर ही अवलंबित रहना पड़ेगा। क्योंकि मिलें तो हाथ-बुनाईकी प्रतिद्वंद्विती हैं और दिन-दिन मिलें ही बुनाईका काम अधिक करती जा रही हैं। यह प्रतिस्पर्द्धा अधिक कड़वी और घातक होती जानेवाली है।

५. इसके विपरीत, हाथ-करघा और चरखा दोनों जुड़वां भाई-बहन हैं। दोनों एक-दूसरेके बिना जी नहीं सकते।

६. प्रत्येक घरमें एक चरखा और थोड़ी आबादीवाले हरएक गांवमें एक करघा, यह आनेवाले युगके विधानका मंत्र है।

५

खादी-उत्पादनकी क्रियाएं

१. खादी-उत्पादनसे संबंध रखनेवाली—लोढ़नेसे लेकर बुनाई तककी—सब क्रियाएं गृह-उद्योग द्वारा ही होनी चाहिएं। यदि इनमेंसे किसी भी क्रियामें कारखानेका सहारा लेना पड़े तो यह किसी दिन खादीके उद्देश्यको खतरेमें डाल सकता है।

२. अतः ओटाई और धुनाई चरखेके आनुषंगिक अंग समझी जानी चाहिए।

३. ओटनी, धनुष, चरखे तथा करघेमें जो कुछ सुधार किये जायं

बुनकरोंको हम काममें लगा सकते हैं। यदि यह कहा जाय कि इतने बुनकर नहीं बल्कि इतने कुटुंबोंको काम मिलेगा तो रोजके दो आने भी उतने लोगोंमें बंट जायंगे। फलतः फी-आदमी आमदनी और भी कम हो जायगी। —कि० घ० म०

वे इस बातका ध्यान रखकर किये जाने चाहिए कि गृह-उद्योगके रूपमें इनका नाश न हो।

४. खादी-सुधारके लिए कपास इकट्ठा करनेसे लेकर बुनाईतककी सब क्रियाओं और साथ ही यंत्रोंका भी सूक्ष्मतासे अध्ययन करके सबमें सुधार करना जरूरी है।

५. इसके लिए पहली सीढ़ी यह है कि जिसके यहां कपासकी खेती होती है वह अपने इस्तेमालके लिए अपनी ही कपास इकट्ठी कर रखे। ऐसा करनेवाला किसान अच्छा बीज प्राप्त करनेकी चिंता रक्खेगा, और कपासको पौधोंपरसे इस तरह चुन लेगा कि उसमें कचरा न आने पाये। किसान यह खुद ही करने लग जायगा, पर इसका महत्त्व समझाने तथा उसे राह दिखाने और सुझाव देनेकी जरूरत है।

६. हाथ-ओटनीमें कपासके बीजको नुकसान नहीं पहुंचता और रुईके रेशोंकी मजबूती कम नहीं होती। ताजी ओटी हुई रुईको धुनना आसान होता है।

७. अच्छी कताई अच्छी पूनीपर बहुत कुछ अवलंबित होती है। जो कातना जानता है वह अच्छी और खराब पूनीका भेद समझता है और जो धुनना जानता है वह उसकी क्रियाओंकी बारीकी समझता है। अतः धुनना जाननेवाला दूसरेकी पूनीका इस्तेमाल लाचारी दर्जे ही करता है।

८. खराब पूनी सूतके नंबर घटाती है और टूटे तारोंका बिगाड़ बढ़ाती है; इस कारण आर्थिक दृष्टिसे वह बहुत हानिकर है।

९. रुईकी किस्म जितना बर्दाश्त कर सके उससे मोटा कातना या अधिक महीन कातना दोनों हानिकर क्रियाएं हैं। पर सामान्यतः कतैयोंका रुख मोटा कातनेकी ओर होता है। इसे रोकनेकी जरूरत है। खादी-उत्पादकोंको इसका खयाल रखना चाहिए कि रुईकी किस्म जितना सह सके उतना ही महीन सूत कताया जाय।

१०. सूत पूरे कसका और समान निकले, इसपर भी उत्पादकोंको नजर रखनी चाहिए।

११. महीन सूतके मानी है थोड़ी रुईमें ज्यादा कपड़ा, कसदार सूत-के मानी है टिकाऊ कपड़ा, और समान सूतका अर्थ है एक सा और सुंदर कपड़ा। फिर, सूत कसदार और एक-सा हो तो बुनकर कम मजदूरीपर उसे बुननेको तैयार रहता है। इस कारण खादी सस्ती करनेके ये महत्त्वपूर्ण अंग हैं।

१२. खादी-सेवकको उत्पत्ति-संबंधी सब क्रियाओंका अनुभवयुक्त ज्ञान होना चाहिए। इसके सिवा खादी-उत्पत्ति-संबंधी सभी यंत्रोंके गुण-दोषका ज्ञान और उनकी मरम्मत करना भी उसे आना चाहिए। उसे खुद इतना कारीगर होना चाहिए कि गांवके किसानोंको ही नहीं, बढ़ई, लुहार इत्यादि कारीगरोंको भी सिखा और राह बता सके। इसके सिवा उसे खादीके आर्थिक अंगका भी ज्ञान होना चाहिए।

६

स्वावलंबी और व्यापारी खादी

१. किसान अपने ही खेतकी कपाससे खुद ओट-धुन-कात ले और सिर्फ बुनाईके पैसे खर्च करे तो वह खादी मिलके कपड़ेकी अपेक्षा उसे सस्ती पड़ती है। यह वस्त्र-स्वावलंबन कहलाता है। जो किसान इसके साथ बुनाईकी क्रिया सीखकर बुनने लगे वह तो पूरा स्वावलंबी हो जायगा और कपड़ा उसे बहुत सस्ता पड़ेगा।

२. किसान बाजारसे——खास करके राह-खर्च लगकर आयी हुई——रुई खरीदकर पूर्वोक्त क्रियाएं खुद करे तो वह कपड़ा मिलके कपड़ेसे आज कुछ महँगा पड़ता है, पर सूतके कस और अंकमें सुधार होनेसे इसकी कसर निकल जायगी। खादीको टिकाऊ बनानेमें जितने अंशमें सफलता प्राप्त होगी उतने अंशमें खादी सस्ती हुई समझना चाहिए।

३. व्यापारी खादीकी किस्मों और सस्तपनमें जो तरक्की अबतक हुई है उससे उसके भावके विषयमें और साथ ही चरखेका काम सही दिशा-किया गया उद्योग है इस बारेमें भी कोई शंका नहीं रहती।

४. परंतु व्यापारी खादीको सस्ती करनेमें जो मेहनत उठायी गयी है वह सब सही रास्ते पर नहीं हुई है, यह अब साफ दिखाई दे रहा है। जिन गरीबोंके हितके लिए यह कार्य उत्पन्न हुआ है उन्हें इसके द्वारा गुजरभरकी मजदूरी मिलती है या नहीं, इस ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया गया।

५. खादी या दूसरे ग्राम-उद्योगोंके उद्धारके लिए काम करनेवाले सेवकों और संघोंका धर्म केवल किसी उद्योगको जैसे-तैसे चालू कर देना ही नहीं है, बल्कि इस बातकी जांच करना भी है कि उन उद्योगोंमें लगे हुए लोगोंको रोटी चलने भरकी मजदूरी मिलती है या नहीं। यदि परिश्रम करनेवालेको उतना पारिश्रमिक न मिलता हो तो कहना होगा कि उस उद्योगके उद्धारसे गरीबकी मेहनतका बेजा फायदा उठाया जाता है।

६. इसके सिवा उन्हें इतनी मजदूरी चुका दी या मिल गयी, इतनेसे ही संतोष नहीं मान लेना चाहिए, बल्कि उन्हे प्रत्येक मजदूरके जीवनमें प्रवेश करना और यह देखना चाहिए कि वह अपने धंधेमें अच्छे-से-अच्छा कारीगर हो और अपनी आमदनी अच्छे-से-अच्छे तरीके-से खर्च करे।

७. खादीके विषयमें नीचे बताये नियम तमाम ग्राम-उद्योगोंपर यथायोग्य रीतिसे लागू किये जा सकते हैं—

(क) प्रत्येक कार्यकर्ताको कपास चुननेसे लेकर सूत बुननेतककी सभी क्रियाएं ठीक तौरसे जान लेनी चाहिए, जिसमें वह दूसरेको भी सिखा सके।

(ख) व्यवस्थापकोंको अपने-अपने क्षेत्रमें काम करनेवाले धुनियों, कतैयों और बुनैयोंकी एक फेहरिस्त रखनी चाहिए।

(ग) अपने कातनेवाले कौनसी रुई इस्तेमाल करते हैं यह भी वे जान लें और यह ध्यान रक्खें कि जितने अंकतकका सूत निकलनेकी ताकत रुईमें हो उससे अधिक नंबरका सूत न काता जाय।

(घ) कत्तिनों तथा खादी बनानेमें सहायक दूसरे कारीगरोंसे साफ कह देना चाहिए कि वे अपने घरमें खादी व्यवहार न करेंगे तो उन्हें काम न मिलेगा।

(ङ) इस चेतावनीके साथ-साथ ऐसी सुविधा भी कर देनी चाहिए जिससे उन्हें मजदूरीके बदलेमें ही खादी मिल जाय ।

(च) खादी कार्यालयमें आनेवाली सूतकी हर एक अट्टीकी मजबूती और समानता जांचनी चाहिए और जैसे कच्ची रोटी नहीं खायी जाती वैसे ही कमजोर या असमान सूत नहीं लेना चाहिए ।

(छ) साधारणत: हरएक कत्तिनका सूत अलग ही रखना चाहिए। और जब कपड़ा बनानेभरको पूरा जमा हो जाय तब उसे अलग बुनवा लेना चाहिए। इससे खादी मजबूत बनेगी और बुनाई तथा सफाईमें भी सुधार हुए बिना न रहेगा ।

(ज) इस तरह तैयार हुए हरएक थानपर, यदि ओटनेवाला, धुननेवाला, कत्तिन और बुनकर अलग-अलग हों तो, सबके नामकी चिट लगी होनी चाहिए ।

(झ) जहां कारीगर कुटुंबीजन हों वहां उपर्युक्त तमाम क्रियाएं अपने ही कुटुंबमें कर लेनेकी प्रेरणा उन्हें करनी चाहिए और उत्तेजन देना चाहिए। अगर मजदूरी समान या लगभग समान कर दी जाय तो यह काम बहुत आसान हो जाय।

(ञ) इन कारीगरोंके जीवन और उनके आमद-खर्चकी पक्की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए और जो अपनी आमदनीका उपयोग विवेकसहित करते हों उनकी मदद करनी चाहिए ।

(ट) यदि कभी बिक्री कम होनेसे संघमें काम करनेवाले कारीगरोंकी संख्या कम करनी पड़े तो पहले उन्हें कम करना चाहिए जिनके पास रोजीका दूसरा साधन हो। मेरी समझमें तो आज यह स्थिति है कि कितने ही प्रांतोंमें केवल आजीविकाके ही लिए कातनेवालियां नहीं कातती हैं, बल्कि थोड़ी कोर-कसर करके दो पैसे बचाकर तुच्छ चीजें खरीदनेवाली स्त्रियां भी कातती हैं। ये न तो अच्छा खाना खानेकी जरूरत महसूस करती हैं और न कर्ज चुकानेकी ही ।

(ठ) हर जगह कार्यकर्ताओंको धनुष और चरखेको बारीकीसे देखना

होगा। खासकर यह देखना होगा कि चरखेका तकुआ पूरे चक्कर करता है या नहीं; क्योंकि जो दर बढ़ानेकी तजवीज हुई है उसका मतलब यह नहीं है कि चाहे जिस कत्तिनको और चाहे जिस कातनेवालेको बढ़ी हुई दर दी जाय। दर तो कुछ जरूर बढ़ेगी, पर वह तो उन्हींको मिलेगी जो आज जितना कातते हैं उतने ही समयमें उससे अधिक और अधिक अच्छा कातेंगे। जो कतवैये या कत्तिनें अपनी कताईकी रीतिमें सुधार नहीं करेंगी उन्हें कुछ भी बढ़ती मिलनेकी संभावना नहीं है, सिवा इसके कि खादीकी मांग ही बढ़ जाय।

(ड) ऊपरके कथनसे यह अर्थ निकलता है कि चरखा-संघको नये चरखे, नये तकुए, नये मोढ़िये वगैरा अच्छे साधन शुरूमे कुछ सस्ते भावमें देने होंगे। बहुत-सी जगहोंमें तो माल और तकुएके सुधारसे सूतकी किस्म अपने आप ही सुधर जायगी।

७

यज्ञार्थ कताई

१. यज्ञार्थ कताईका अर्थ है अपने आर्थिक लाभकी दृष्टि न रखकर गरीबोंके उपयोगके लिए कातना।

२. जिसे गरीबोंके और देशके हितका खयाल है उसे इस प्रकार प्रतिदिन यज्ञार्थ कातना चाहिए।

३. इससे वे गरीब लोग कातनेमें लगेंगे जिन्हें थोड़ी आमदनीकी जरूरत होती है।

४. इसके सिवा हम लोग, जो कोई उत्पादक श्रम किये बिना बहुत-सी चीजोंका उपभोग किया करते हैं, उत्पादक श्रमकी महिमा समझेंगे और उसमे अपना कुछ हिस्सा अदा कर सकेंगे।

५. इस प्रकार धनी और गरीब दोनो एक प्रकारके श्रममें समान हिस्सेदार बनकर एक-दूसरेसे समुचित संबंध रख सकेंगे।

६. इसके सिवा चरखेको त्याग कर विदेशी कपड़ेको लानेका हमने

जो पाप किया है, यज्ञार्थ कताई उसका प्रायश्चित्त-रूप भी समझी जा सकती है।

७. इस कारण आज कातना केवल स्त्रियोंपर ही नहीं बल्कि पुरुषों और बच्चोंपर भी फर्ज है।

८. जो अपना सूत खुद कात लेते हैं वे देशके लिए आवश्यक कपड़ेके बारेमें अपनी जिम्मेदारी खुद उठा कर सहायता देते हैं। पर इसे यज्ञार्थ कताई नहीं कह सकते।

९. इस तरह कातनेके श्रमका दान बहुत बड़े परिमाणमें देशको मिले तो इससे भी व्यापारी खादी गरीबोंकी मजदूरी कम हुए बिना, सस्ती हो सकती है।

८
खादी-कार्य

१. खादीकी उत्पत्ति और बिक्रीके काममें सैकड़ों उच्चाकांक्षी युवकोंके लिए अपनी बुद्धि, व्यवस्था-शक्ति, व्यापारिक चतुरता और शास्त्रीय ज्ञानके प्रदर्शनका लंबा-चौड़ा मैदान खुला पड़ा है। इस एक ही कामको सम्यक् रीतिसे संपन्न कर दिखानेसे राष्ट्र अपनी स्वराज्य-संचालनकी योग्यता सिद्ध कर सकता है।

२. इसके सिवा खादीरूपी सूर्यके आस-पास देहातके अनेक उद्योग ग्रहोंकी तरह बढ़ सकते हैं और उसके द्वारा जबरन निरुद्यमी और आलसी बने हुए लोगोंके घर रोजी और धंधोंसे आबाद हो जायेंगे।

३. इसके सिवा यह काम आत्मशुद्धिके कार्यमें बहुत बड़ी सहायता दे रहा है। इसके निमित्तसे कार्यकर्ता गांव-गांवमें स्वराज्यका और उसकी तैयारीके रूपमें किये जानेवाले रचनात्मक कार्यक्रम (अहिंसा, मद्यपान-निषेध, अस्पृश्यता-निवारण, स्वच्छता, राष्ट्रीय एकता आदि) का संदेश पहुंचा रहे हैं।

४. खादी-शास्त्रके संबंधमें सब प्रकारकी जानकारी देने और खोज-छानबीन करनेवाले एक विभागकी जरूरत है।

खंड १० :: स्वच्छता और आरोग्य

१

शारीरिक स्वच्छता

१. शारीरिक स्वच्छताके विषयमें हिंदुस्तानकी कुछ जातियोंने तो ठीक तौरसे ध्यान दिया है, पर साधारण जनतामें इस विषयमे अभी बहुत काम करना है ।

२. बच्चेकी सफाईपर तो उन जातियोंमें भी बहुत कम ध्यान दिया जाता है । बालकके खुद सफाई रखनेके लायक होनेके पहले उसके मां-बाप उसे साफ-सुथरा रखनेकी पूरी फिक्र रखते हों, यह नही दिखाई देता ।

३. नित्य स्नान करना चाहिए, इसे हिंदुओंका बहुत बड़ा भाग धार्मिक नियमकी भांति मानता है; पर हिंदूमात्र ऐसा मानते है यह नही कह सकते । दूसरे हिंदुस्तानियोंमें रोज नहानेकी आदत आम नही है । हिंदुस्तानमें रोज नहाना स्वच्छता और साथ ही आरोग्यके लिए आवश्यक है ।

४. पर नहानेका मतलब सिर्फ बदन गीला कर लेना नहीं है । बहुतेरे नित्य नहानेवाले इससे आगे नहीं बढ़ते । नहानेके मानी हैं शरीरका मैल साफ करके त्वचाके छिद्रोंको खोल देना । अतः नहानेका पानी पीनेके पानी जितना ही साफ होना चाहिए । ऐसा पानी काफी मात्रामें रोज न मिल सके तो गंदे पानीमें नहानेकी बनिस्बत साफ पानीमें कपेड़ा भिगोकर उससे शरीरको रगड़कर पोंछ डालना कहीं अच्छा है । हमारे देशके गांवोंमें ही नहीं, बड़े-बड़े कस्बोंमें भी लोग जैसे पानीसे नहाते हैं उसे नहानेलायक नहीं कह सकते ।

५. आंख, नाक, कान, दांत, नाखून, बगल, काछ आदि अवयव जिनसे मैल निकलता है अथवा जिनमें मैल भरा रहता है उनकी सफाईकी तरफ सभी लोगोंमें—खासकर बच्चोंके बारेमें—बहुत लापर-

वाही रक्खी जाती हैं। छोटे बच्चोंमें आम तौरपर होनेवाली आंखकी बीमारियां रोज आंख और नाकको साफ पानी और साफ कपड़ेसे साफ न कर देनेका नतीजा है। इस विषयमें सफाईके लिए मुनासिब आदतें लगाने और गंदगीसे घिन करना सिखानेकी ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। अतः ग्राम-सेवकों और शिक्षकोंको इस विषयपर बहुत बारीकीसे ध्यान देना चाहिए।

६. कपड़ोंकी सफाई भी शारीरिक-स्वच्छताका ही भाग है। कपड़ोंकी गंदगीका कारण केवल दरिद्रता ही नहीं कही जा सकती। बहुतेरी गंदगी तो अच्छी आदतें न पड़ी होनेसे और आलस्यके कारण रहती हैं।

७. चकती लगे कपड़ोंसे हमारी दरिद्रता प्रकट होती है तो इससे हमें शर्मिदा होनेकी जरूरत नहीं। शूरवीरके लिए जैसे घाव भूषणरूप होता है वैसे ही गरीबके लिए पैबंद भूषण भी समझा जा सकता है। पर कपड़ोंको फटा और गंदा रखकर मनुष्य अपनी गरीबीका नहीं बल्कि अपने फूहड़पन और आलस्यका विज्ञापन करता है और यह जरूर शर्मिदा होने लायक बात है।

८. साफ कपड़े दूधकी तरह सफेद होने चाहिए, ऐसी बात नहीं है। मेहनत-मजदूरी करनेवाले गरीब लोग सफेद दूध-जैसे कपड़े रखकर पार नहीं पा सकते। पर साफ पानीसे उन्हें बार-बार धोना, बीच-बीचमें साबुन या खार आदिसे धो लेना और गरम पानीमे डालकर जंतुरहित कर लेना आवश्यक है।

९. बदनपर पहने हुए कपड़ोंसे ही नाक, हाथ, वगैरा पोंछना और उनमें रोटियां या खानेकी दूसरी चीजें बांध लेना बड़ी गंदी आदत है। जिनके पास बदनपरके कपड़ोंके सिवाय दूसरा कपड़ा ही नहीं है उन्हें छोड़कर औरोंको तो इसके लिए पुराने कपड़ोंमेंसे छोटा-सा रूमाल बनाकर उसका उपयोग करना चाहिए। इसमें कुछ खर्च नहीं लगता और स्वच्छताकी रक्षा होती है। इसे साफ रखना बहुत आसान है।

२

साफ-सुथरी आदतें

१. शारीरिक स्वच्छताके सिवा और भी साफ-सुथरी आदतें डालनेकी जरूरत है। इनके अभावमें हम उन लोगोंके दिलोंमें नफरत पैदा करते हैं जिनकी आदतें सुथरी हैं ।

२. हमारी आंखोंको ऐसा अभ्यास होना चाहिए कि वे गंदगीको देखकर खामोश न रह सकें। इसका अर्थ यह नहीं है कि गंदगी देखकर हम वहांसे खिसक जायं, बल्कि फौरन उस गंदगीको दूर करनेका उपाय करें।

३. सुथरी आदतोंवाला आदमी कभी बैठनेकी जगहको साफ किये बिना न बैठगा, और जब उठेगा तब भी उसे साफ कर देगा। वह हर जगह कागजके टुकड़े या दूसरा कूड़ा-करकट न फेंकेगा। जहां-तहां थूकेगा नहीं। दतुअनका चीरन, बीड़ीके ठूंट, जली हुई दियासलाइयां, चाहे जहां नहीं फेंकेगा; बल्कि इन सबके लिए खास टोकरी या दूसरा बरतन रखकर उसीमें फेंकेगा।

साफ-सुथरी आदतें लगानेके लिए नीचेके नियमोंका भी पालन करना चाहिए––

४. पानी लिये बिना पाखाने नहीं जाना चाहिए ।

५. पाखानेसे आकर हाथ-पांवको मलकर धोना चाहिए और पाखानेका लोटा––खास उसीके लिए न हो तो––अच्छी तरह मांजना चाहिए।

६. पीनेके पानीके मटकेमें डुबोनेको अलग बरतन रखना चाहिए। जूठा बरतन तो उसमें कदापि न डालना चाहिए। मटकेके पास इस तरह खड़े रहकर पानी नहीं पीना चाहिए कि पानीके छींटे मटकेपर पड़ें।

७. जहां बहुतसे लोगोंके लिए पीनेका एक ही बरतन हो वहां प्याले या गिलासको मुंहसे लगाकर पानी पीना अनुचित है। ऊपरसे पीनेकी आदत डालनी चाहिए और जो इस तरह न पी सकें उन्हें अपना बरतन अलग रखना चाहिए या चुल्लू-अंजलीसे पीना चाहिए।

८. जहां भोजन किया हो वहां यदि खानेकी चीजें बिखरी हों तो उन्हें उठाकर उस जगहको, घरके अंदर हो तो धोकर और खुलेमें हो तो अच्छी तरह बुहारकर, साफ कर देना चाहिए। ऐसा होनेके पहले उस जगहमें घूमना-फिरना, जूठन-चिपके पांवोंसे साफ जगहों और कमरेमें जाना-आना तथा उस जगह दूसरोंको भोजन कराना अनुचित है। इसके सिवा ऐसा स्थान मक्खियोंकी बलाको न्योता देनेके समान है।

९. साधारणतः कलछी या चमचेसे ही परोसना चाहिए। साग, दाल या भात जैसी चीजें हाथसे नहीं परोसनी चाहिएं। इससे भी ज्यादा खराब है जूठे हाथसे परोसना। रोटी अथवा पूरी जैसी सूखी चीजें भी जूठे हाथसे नही देनी चाहिए।

१०. परोसनेका बर्तन खानेवालेकी थाली या कटोरीसे छुआकर परोसना अस्वच्छता है और छू जानेके डरसे परोसनेके बजाय थालीमें दूरसे फेंकना या बिखेरना असभ्यता है।

११. गदे पांवों अपने बिछौनेपर भी पैर नहीं रखना चाहिए। अनेक मनुष्य जहां साथ सोये हों वहां चलने फिरनेवालेको किसीका बिछौना रौंदना न चाहिए।

१२. कामसे आकर अथवा लघुशंका करके हाथ धोये बिना खानेकी चीजको न छूना चाहिए, न पीनेके पानीके मटकेमें हाथ डालना चाहिए। पान, तंबाकू, बीड़ी आदिके व्यसनवालोंको इस विषयमें खास एहतियात रखनी चाहिए। कितनोंके शरीरमें बराबर खुजली होती रहती है, कितनोंको बार-बार नाक साफ करनी पड़ती है। ऐसे आदमियोंको भी हाथ धोकर ही खाने-पीनेकी चीजें छूनी चाहिए।

१३. जिस डोल या बाल्टीमें कपड़े धोये हों उसे मांजे और उसकी चिकनाई दूर किये बिना उसे कुएंमें नहीं डालना चाहिए और न पीने-पकानेका पानी उससे भरना चाहिए।

१४. पेशाब, कुल्ली करने, थूक वगैराके लिए मोरियोंका उपयोग करनेका रिवाज बहुत ही गंदी है और बहुत ही अच्छा हो कि ऐसी

मोरियां 'घरमें रक्खी ही न जायें। इसके लिए खास बरतन काममे लाना और उन्हें दूर ले जाकर साफ करना अच्छे-से-अच्छा कायदा है। जिन गांवोंमें गंदे पानीके निकासके लिए अच्छी नहर (गटर) की व्यवस्था नही है वहां मोरियोंसे काम नहीं लेना चाहिए।

१५. तथापि जहां मोरियोसे ही काम लेना पड़े वहां नालीमें पेशाब करनेके लिए बैठनेवालेको चाहिए कि नजदीक कोई बरतन आदि पड़ा हो तो उसे इतनी दूर रख दे जिससे उसपर छींटें न पड़ने पायें। इसके सिवा इस तरह हाथ धोना या कुल्ली नहीं करना चाहिए जिससे उसपर छींटें पड़ें।

१६. मुंहसे भद्दी गालियां निकालनेकी आदत भी एक प्रकारकी अस्वच्छता ही है। जिस जीभसे परमात्माका नाम लिया जाता है उसी जीभसे गंदी गालियां निकालना नहाकर घूरपर लोटनेसे भी ज्यादा गंदा काम है, क्योंकि इससे जीभके साथ-साथ मन भी अपवित्र होता है।

३

बाह्य स्वच्छता

१. शारीरिक स्वच्छताके विषयमें शायद ऊपरवाले वर्गोको प्रमाण-पत्र दिया जा सके, पर घर, आंगन, गली वगैराकी सफाईके बारेमें नही दिया जा सकता। हां, दलित जातियां अलबत्ता इस बारेमें छोटी-मोटी सनद पा सकती हैं। पर सभीको इस विषयमें अपने जीवनमें बहुत सुधार करनेकी आवश्यकता है।

२. जहां-तहां थूकने मल-मूत्र त्याग करने, कूड़ा फेंकने और उसे इकट्ठा होने देनेकी आदत हिंदुस्तानके गांव, शहर, तीर्थक्षेत्र, रास्ते, नदी, तालाब, धर्मशाला, स्टेशन, रेल, जहाज वगैराको कलंकित कर डालती है।

३. इस आदतकी जड़में अस्पृश्यता समायी हुई है। आदमी जहां रहेगा वहां गंदगीके निमित्त तो पैदा होंगे ही। पर हिंदुस्तानके स्पृश्य वर्गों-

ने खुद गंदगी साफ करनेके कामको हलका समझकर और उस परोपकारी कामके करनेवालोंको अस्पृश्य मानकर, जहां वे नहीं जा सकते वहांसे गंदगीको नियमित रीतिसे दूर करनेके बदले इकट्ठी करनेका रिवाज डाल रक्खा है और अस्पृश्योंसे सहयोग न करके उनके माथे इतना ज्यादा काम मढ़ दिया है जो उनके किये हो नहीं सकता । परिणामस्वरूप देशमें अनेक प्रकारके उपद्रवोंको बसा रक्खा है और आम इस्तेमाल स्थानोंको ऐसा बना दिया है कि देखकर रोएं खड़े हो जायं ।

४. ऊपर बताये सार्वजनिक स्थानोंमें थूकना, मल-मूत्र त्याग करना और कूड़ा फेंकना पाप है और इसे अपराध मानना चाहिए ।

५. पान-तंबाकू वगैराकी आदत न हो तो नीरोग मनुष्यको दतुअन-के सिवा दूसरे वक्तमें थूकनेकी जरूरत नहीं होती । दांत, नाक या फेफड़ेके बीमारको बारबार थूकना या छिनकना पड़ता है । इससे जाहिर होता है कि पान-तंबाकू आदिकी आदत डालनेके मानी हैं निरोगी होते भी रोगीको मिलनेवाला कष्ट भोगना । मनुष्यके थूक तथा बलगममें बहुत तरहके जहर होते हैं । ये जहर हवामें मिलकर तंदुरुस्त आदमीको भी छूत लगा देते है । अतः थूक, बलगम आदिको नष्ट करनेकी व्यवस्था करनी चाहिए ।

६. हर घरमें थूकनेके लिए राखसे भरी हुई एक अथरी या हंडिया होनी चाहिए और उसीमें सबको थूकना चाहिए । उसे रोज दूर खेतमें ले जाकर खाली करना और दूसरी राखसे भरना चाहिए । थूकनेके लिए पीकदानी इस्तेमालकी जाती हो तो उसे हर जगह साफ नहीं करना चाहिए । बंबई जैसे शहरोंमें जहां गटरोंका पूरा इंतजाम है वहां भले ही वह नालीपर धोयी जाय, पर देहात और कस्बोंमें तो उसे खेतोंमें खाली करके उसपर सूखी मिट्टी डाल देनी चाहिए, या गरम-गरम राख उसपर डालकर वह राख दूर फेंक आनी चाहिए ।

४

शौच*

१. सड़कपर पाखाना फिरनेकी आदत तो हर्गिज न होनी चाहिए । खुली जगहमें लोगोंके देखते पाखाना फिरना बल्कि बच्चोंतकको फिराना असभ्यता है ।

२. इसलिए प्रत्येक गांवमें घूरकी जगहमें सस्ते-से-सस्ते पाखाने बनवाने चाहिए और उन्हें नियमित रूपसे रोज साफ कराना चाहिए ।

३. जो 'जंगल' ही जाना हो तो गांवसे एक मील दूर जहां आबादी न हो वहां जाना चाहिए। 'जंगल' बैठते वक्त खड्डा खोद लेना चाहिए और क्रिया पूरी करनेके बाद मलपर खूब मिट्टी डाल देनी चाहिए। समझदार किसानको चाहिए कि अपने खेतोंमें ही पूर्वोक्त प्रकारके पाखाने बनाकर अथवा 'जंगल' जाकर मैला गाड़े और बे-पैसेकी खाद ले ।

४ इसके सिवा बालक, बीमार तथा बेवक्तके इस्तेमालके लिए हर घरके साथ एक पाखाना जरूर होना चाहिए। उसके लिए कनस्तरके अद्धे या मिट्टीके गमलेका उपयोग किया जा सकता है और उसमें भी हर आदमीको पाखाना फिरनेके बाद काफी मिट्टी डाल देनी चाहिए। इन कनस्तरोंको रोज किसी खेतमें गड्ढा खोदकर उसमें खाली करना चाहिए और खड्ढेको साफ मिट्टीसे भर देना चाहिए। कनस्तरको इस तरह साफ करना चाहिए कि बदबू न रहे ।

५. पाखानेमें पानी और पेशाबके लिए अलग डिब्बा या डोल रखना चाहिए जिससे बाहर जरा भी गीला न होने पाये।

६. संडास पाखाने बिलकुल बेकार हैं । इतनी गहराईमें

*** यह तथा इसके आगेके कितने ही प्रकरण गांधीजी लिखित 'गामड़ानी वहारे' नामक लेखमालाके आधारपर लिखे गये हैं । 'ग्राम-सेवा' के नामसे यह पुस्तिका 'मंडल'से प्रकाशित हो चुकी है । मूल्य ।) है ।**

है। और यही पानी पीने, खाना पकानेके काममें लाया जाता है—यह सब पाप माना जाना और बंद होना चाहिए।

३. गांवके तालाबके चारों ओर बांध बना देना चाहिए, जिसमें मवेशी उसमें न जा सकें और उसके नजदीक खेल (लंबी हौज) पशुओंके पानी पीनेको बनाना चाहिए।

४. इसी प्रकार कपड़े धोनेके लिए तालाबके पास एक टंकी होनी चाहिए और उसपर ऐसी पक्की जगत बना देनी चाहिए जिससे उसका पानी फिर तालाबमें न पहुंचकर दूर निकल जाय।

५. इस खेल तथा टंकीको गांवके लोग अगर हाथोंहाथ रोज भर दिया करें तो उत्तम है, वर्ना थोड़े खर्चसे उनके भरानेकी व्यवस्था करनी चाहिए।

६. जूठे बरतन तालाब या कुएंमें न धोने चाहिएं, बल्कि बाहर की टंकीमें मांज-धोकर ही जलाशयमें उन्हें डुबोना चाहिए।

७. पानी भरनेवालेको अपने पांव पानीमें न डुबोने पड़ें ऐसी सुविधा तालाबमें होनी चाहिए।

८. जिस गांवमें एक ही तालाब हो वहां तालाबके अंदर नहाना नहीं चाहिए। जहां अधिक तालाब हों वहां पीनेके पानीका तालाब अलहदा रखना चाहिए।

९ कुओंको समय-समयपर मिट्टी निकलवाकर साफ रखना चाहिए। उसके चारों ओर मुंडेर होनी चाहिए, और कीचड़ न होने देना चाहिए। इसके लिए उसकी जगत पक्की बनानी चाहिए और पानी रसकर कुएंमें वापस न जाय इसके लिए गिरनेवाले पानीको दूर निकालनेका इंतजाम होना चाहिए।

१०. इस तरह पानीको दूर ले जानेके लिए घर, कुएं आदिके सामने बनी हुई नालियोंमें काई और घास-पात जम जाती है। उनमेंसे बदबू निकलती है और मच्छरोंको बढ़नेकी जगह मिलती है। अतः इन नालियोंकी सफाईपर निरंतर ध्यान दिया जाना चाहिए और उन्हें रोज कूंचेसे रगड़कर साफ कर देना चाहिए।

है। और यही पानी पीने, खाना पकानेके काममें लाया जाता है—यह सब पाप माना जाना और बंद होना चाहिए।

३. गांवके तालाबके चारों ओर बांध बना देना चाहिए, जिसमें मवेशी उसमें न जा सकें और उसके नजदीक खेल (लंबी हौज) पशुओंके पानी पीनेको बनाना चाहिए।

४. इसी प्रकार कपड़े धोनेके लिए तालाबके पास एक टंकी होनी चाहिए और उसपर ऐसी पक्की जगत बना देनी चाहिए जिससे उसका पानी फिर तालाबमें न पहुंचकर दूर निकल जाय।

५. इस खेल तथा टंकीको गांवके लोग अगर हाथोंहाथ रोज भर दिया करें तो उत्तम है, वर्ना थोड़े खर्चसे उनके भरानेकी व्यवस्था करनी चाहिए।

६. जूठे बरतन तालाब या कुएंमें न धोने चाहिएं, बल्कि बाहर की टंकीमें मांज-धोकर ही जलाशयमें उन्हें डुबोना चाहिए।

७. पानी भरनेवालेको अपने पांव पानीमें न डुबोने पड़ें ऐसी सुविधा तालाबमें होनी चाहिए।

८. जिस गांवमें एक ही तालाब हो वहां तालाबके अंदर नहाना नहीं चाहिए। जहां अधिक तालाब हों वहां पीनेके पानीका तालाब अलहदा रखना चाहिए।

९ कुओंको समय-समयपर मिट्टी निकलवाकर साफ रखना चाहिए। उसके चारों ओर मुंडेर होनी चाहिए, और कीचड़ न होने देना चाहिए। इसके लिए उसकी जगत पक्की बनानी चाहिए और पानी रसकर कुएंमें वापस न जाय इसके लिए गिरनेवाले पानीको दूर निकालनेका इंतजाम होना चाहिए।

१०. इस तरह पानीको दूर ले जानेके लिए घर, कुएं आदिके सामने बनी हुई नालियोंमें काई और घास-पात जम जाती है। उनमेंसे बदबू निकलती है और मच्छरोंको बढ़नेकी जगह मिलती है। अतः इन नालियोंकी सफाईपर निरंतर ध्यान दिया जाना चाहिए और उन्हें रोज कूंचेसे रगड़कर साफ कर देना चाहिए।

६

रोग

१. रोग और रोगके बाहरी लक्षणोंके बीच जो भेद है उसे समझ लेना चाहिए।

२. सिर दुखना, बुखार आना, दम फूलना, वगैरा रोग नहीं है बल्कि शरीरमें पैदा हुए जहरों या रोगोंके दिखाई देनेवाले परिणाम हैं।

३. प्राणियोंका रक्त ऐसे परोपकारी जंतुओंसे बना हुआ है जो शरीरमें पहुंचे हुए जहरोंको निकाल डालनेकी जोरोंसे कोशिश करते रहते हैं। यह बलवान प्रयत्न ही बुखार, सांस, सूजन, दर्द इत्यादिके रूपमें प्रकट होता है।

४. जिन कारणोंसे ये जहर पैदा हुए हों या होते रहते हों वह सच्चा रोग है; बुखार वगैरा तो बाहरी चिन्ह मात्र हैं।

५. गिरने, चोट लगने आदि आकस्मिक दुर्घटनाओंसे उत्पन्न रोगोंको छोड़कर मोटे हिसाब यह कहा जा सकता है कि रोगमात्रका कारण है असंयमी जीवन।

६. खाने-पीने, विषय-भोग, सोने-जागनेमें अनियम, आलस्य, अतिश्रम, नाटक-सिनेमा इत्यादि विलास तथा द्वेष, क्रोध, राग इत्यादि भावनाओंके बलवान वेग आदि——यही असंयम रोगोंको न्यौता देनेवाले हैं।

७. ये असंयम अज्ञानसे होते हों, भूलसे होते हों, मजबूरीसे होते हों या जानबूझकर होते हों, सबका परिणाम शरीरको रोगके रूपमें भोगना पड़ता है।

८. ये कारण मौजूद हों और उसमें अस्वच्छ हवा, अस्वच्छ पानी और गंदगी आ मिले तो रोग पैदा होजाते हैं।

९. यह देखा जाता है कि स्वच्छ और संयमी जीवन बितानेवालेको छूतके रोगियोंके बीचमें रहते हुए भी रोग नहीं होते। इससे प्रकट होता है कि मनुष्यके रक्तमें बाहरी जहरोंको हटानेकी बड़ी ताकत होती है। असंयमके कारण इस बलके घट जानेपर ही छूत लगती है।

१०. रोगके कारणोंको रोकना पहला इलाज है। इन इलाजोंमें भी पहला इंद्रियों और मनके संयमके साथ स्वच्छ तथा उचित आहार-विहार तथा यथेष्ट परिश्रम और नींद है और दूसरा है साफ हवा, साफ पानी, तथा कपड़े, घर-आंगन, गलियों वगैराकी सफाई।

७

इलाज

१. शरीरमें अस्वस्थता मालूम होनेपर रोगको रोकनेवाले इलाजोंपर अमल करना, पहली सीढ़ी है।

२. इन इलाजोंपर ठीक अमल हो तो रोग बहुत करके स्वाभाविक रूपसे ही अच्छे हो जाते हैं। दवाइयां अधिकतर तो निकम्मी और हानिकर भी होती हैं।

३. आहार-विहारकी भूलोंको दूर किये बिना सिर्फ हवा-पानीके सुधारसे रोग दूर करनेकी इच्छा करना शरीरको साफ पानीसे धोकर मैले गमछेसे पोंछने जैसा है। और इन दोनोंको सुधारे बिना दवासे आराम होनेकी कामना करना ऐसा है जैसे यह मानना कि मैला कपड़ा काला रंग लेनेसे साफ हो जाता है।

४. दवाके अलावा दूसरे वैज्ञानिक इलाज हैं जिनका हरएकको ज्ञान होना चाहिए। ये आसानीसे और बिना खर्चके किये जा सकते हैं।

५. हरएक गांवमें दवाखाना या अस्पताल होना चाहिए, यह खयाल गलत है। अनेक गांवोंके बीच एक दवाखाना या अस्पताल भले ही हो। गांवके दवाखानेके मानी आम तौरसे ग्राम-सेवकके उपचार होना चाहिए।

६. सबसे अच्छा उपचार है उपवास और उसके साथ कटिस्नान तथा सूर्यस्नान। इसकी उपयुक्त विधिका ज्ञान स्वयंसेवकको प्राप्त कर लेना चाहिए।*

---

*इस विषयमें गांधीजीकी 'आरोग्य-साधन' पुस्तक पढ़नी चाहिए।

७. इसके अलावा भीगी मिट्टीकी पट्टी बहुतेरे रोगों और बुखारोंका इलाज कही जा सकती है। बुखार तेज चढ़ा हो, सिर दुखता हो, पेट या पेडूमें दर्द हो, भीतरी चोट या दूसरे कारणोंसे कहीं सूजन आयी हो, नकसीर फूटी हो, खसरा, खाज इत्यादि चर्मरोग हुए हों, कब्ज रहता हो, अच्छी नींद न आती हो, जहरीले जंतुने डंक मारा हो— इन सबमें बिना कंकड़ीकी बारीक मिट्टी भिगोकर उसकी पट्टी दर्द-तकलीफ़ की जगह बांधना और एक पट्टी या लेप सूख जानेपर दूसरा बांधना अकसीर और प्राकृतिक इलाज है।

८. सेंककी जरूरत हो—जैसे फोड़ेको पकाना हो, सांस लेनेमें कष्ट-कठिनाई होती हो, थकावट या सरदीकी पीड़ा हो—तो गरम पानीमें छोटा तौलिया निचोड़कर खाल जल न जाय इस प्रकार सेंक लेनेसे बहुत आराम मिलता है। बालू, मिट्टी या ईंटसे भी, उसे गरम करके कपड़ेमें लपेट-कर, जले नहीं इसका ध्यान रखते हुए, सेक लिया जासकता है।

९. किसीके बीमार होते ही तुरंत उसका बिछौना दूसरे लोगोंसे अलग कर देना चाहिए। उसके आसपाससे आदमियों और चीज-वस्तुकी भीड़ कम कर देनी चाहिएं। उसको इस तरह लिटाना चाहिए जिससे काफी प्रकाश और झोंका न लगते हुए हवा मिल सके। उसके कपड़े, चादर, ओढ़ना वगैरा साफ रखने चाहिए। उसके कंबल, बिछौने, तकिये वगैराको दूसरे-तीसरे रोज तेज धूपमें रखना चाहिए।

१०. बीमारको दवा देनेसे ज्यादा जरूरत है उसके शरीर, मन और पेटको आराम देनेकी। इनमेंसे पेटको आराम देनेकी बातपर बहुत ही कम ध्यान दिया जाता है।

११. अगर भूखमरीसे ही रोग न लगा हो तो रोगीको चाहे जो मर्ज हुआ हो, उसका पेट बिगड़ा हुआ न हो ऐसा क्वचित ही होता है। इसलिए उसके पेटको हलका करना उपचारकका पहला काम है। इसके लिए वस्ति (एनिमा) देना पहला उपाय है, और अगर बुखार जोरका न हो तो एकाध जुलाब दिया जासकता है। इसके साथ एक या दो लंघन करानेमें तो कोई हानि है ही नहीं। यदि बीमार बहुत कमजोर

हो तो उसे अधिक उपवास कराये जायं या नहीं, इसके लिए किसी अनुभवीकी सलाह लेना आवश्यक है। ऐसे सलाहकार मिलें या न मिलें पर इतनी बात तो अच्छी तरह समझ ही रखनी चाहिए कि जब बीमार का खून रोगके जहरोंसे लड़ाई लड़ रहा हो उस समय भोजन पचानेका बोझा उसपर नहीं होना चाहिए और यदि उसे खुराक देनी ही पड़े तो वह हल्की-से-हलकी और सिर्फ प्राणधारण भरको ही होनी चाहिए।

१२. गाय या बकरीके दूधको ऐसी हलकी खुराक कह सकते हैं। १० से २० तोला तक दूध बीमारीमें प्राण टिका रखनेको काफी समझा जा सकता है।

१३. पर बीमारी, और लंघनमें भी रोगीको साफ पानी काफी मात्रामे पिलाना चाहिए। पानीके साथ सोडा बाईकार्ब और थोड़ा नमक देना अच्छा है। खट्टा नीब भी साधारणतः दिया जासकता है, और जड़ैया बुखारमें जब उलटी होती हो या सिर दुखता हो तब नीबू जरूर देना चाहिए।

१४. जड़ैया बुखारमे कुनैन देनी ही पड़े ऐसा हो सकता है। पर ऊपर बतायी हुई सावधानी रखी जाय तो आम तौरसे डाक्टर जिस बड़ी मिकदारमें देते हैं उसकी जरूरत नही पड़ती। कुनैनको नीबूके रसमे सोडाके साथ लेनेसे कम नुकसान करनेकी संभावना रहती है।

१५. बुखार बहुत तेज हो और उसे जल्दी उतारना इष्ट हो तो भीगी चादरका उपाय किया जा सकता है। यह उपाय 'आरोग्य-साधन' पढ़कर समझ लेना चाहिए।

१६. बुखार मीयादी न हो फिर भी बीमारी बहुत दिनों तक बनी रहे तो समझना चाहिए कि हवा-पानी बदलनेकी जरूरत है और बीमार को दूसरे प्रकारकी आबहवामें लेजाना चाहिए। आरोग्यके लिए प्रसिद्ध स्थानोंकी ही तलाश की जाय यह जरूरी नही है।

१७. ऊपर बताये गये इलाज आकस्मिक बीमारियोंके लिए हैं। पुराने लंबे रोग जैसे क्षय, कोढ़, रक्तपित्त आदिका इलाज भी इन तरीकों

से किया जा सकता है, पर उनमें अनुभवी व्यक्तिकी सलाह और धीरज की जरूरत होती है।

१८. दवाका सहारा लेनेकी आदत बुरी है। कोई पुराना रोग दवासे मिटता ही नहीं यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं है।

१९. डाक्टरोंको चाहिए कि रोगियोंको सीधे-सादे उपचार सिखायें और दवापर उनका विश्वास न जमायें।

२०. डाक्टरोंको दवापरका विश्वास अक्सर वैसा ही अंधविश्वास होता है जैसा ओझा-सोखाके जंतर-मंतर और झाड़-फूंक आदिपर होता है। रोगीको अच्छा करनेवाली तो उसके खूनमें मौजूद कुदरती प्राणशक्ति ही है। रोगसे वह शक्ति हार न जाय तो रोगी बच जाता है। उसे हारने न देने के लिए ऊपर बताये हुए उपचारोंको काफी समझना चाहिए। फिर भी रोगी न बचे तो समझना चाहिए कि उसकी आयु समाप्त हो चुकी थी। डाक्टरों और झाड़-फूंकवालोंके पीछे दौड़-धूप और पैसोंकी बरबादी न करनी चाहिए।

२१. सोड़ा बाईकार्बको दवा मानें तो वह और कभी रेंडीके तेल जैसा जुलाब तथा कुनैन और बाहरी उपचारके लिए आयोडिन——इससे अधिक दवाइयां रखनेकी ग्राम-सेवकको जरूरत नहीं है यह कह सकते हैं। इनके अलावा यदि वस्ति (एनिमा) का साधन उसके पास हो तो समझ लेना चाहिए कि उसका औषधालय काफी हो गया।

८

आहार

१. मांसाहारकी मनुष्यको कोई आवश्यकता नहीं है।

२. हिंदुओंका पतन मांसाहार छोड़नेके कारण हुआ है यह खयाल भ्रम-भरा और असलियतसे भी दूर है, क्योंकि हिंदू राजाओं और सैनिक जातियोंने बहुत समयतक मांसाहार छोड़ दिया हो ऐसा नहीं जान पड़ता।

३. यह माननेके लिए कोई कारण नहीं है कि मांसाहार न करनेवाली जनता शरीरसे काफी सशक्त, निरोग और बहादुर नहीं हो सकती।

४. निरामिष आहारका समर्थन करते हुए भी मांसाहारीसे द्वेष करना उचित नहीं। हिंदुस्तानमें बहुतेरी जातियोंको तो महज गरीबीके कारण ही मांसाहार करना पड़ता है।

५. दूध भी मांस ही है। तथापि उसमें प्राणीवध-रूपी हिंसा नहीं है इतना फर्क है। चित्तशुद्धिमें दूधका आहार विघ्नरूप है।

६. पर निरामिष-भोजी हिंदू जनताके लिए दूधके बदले कोई दूसरी वनस्पतिजन्य खुराक नहीं बतलायी जासकती जो पूरा पोषण देनेंवाली हो। अतः दूधको अपवाद किये बिना चारा नहीं है, इतना ही नहीं बल्कि दूध सबको मिल सके इसका उपाय करनेकी जरूरत है।

७. निरामिषाहारमें फल अथवा बिना रांधी खुराक कुदरती होनेके कारण श्रेष्ठ है। दूसरे सब प्राणी कुदरतकी तैयार की हुई खुराक उसके मूल स्वरूपमें ही खाते हैं। मनुष्यके इसमें अपवाद होनेका कोई कारण नहीं दिखाई देता।

८. तथापि इस कुदरती स्थितिसे पतित होकर हमने रांधनेका जंजाल ऐसा उठा लिया है कि मनुष्य-जातिका बड़ा भाग अब केवल प्राकृतिक भोजनपर निर्वाह करनेके अयोग्य-सा होगया है और जो खुराक स्वाभाविक रूपसे ली जा सकनी चाहिए वह अब कुशल अन्नशास्त्री की सलाहके बिना ग्रहण नहीं की जा सकती, ऐसी हालत हो गयी है।

९. इससे रांधना बहुतोंके लिए अनिवार्य हो गया है। तथापि रांधनेका अर्थ बफाना, सेंकना और भूनना यही होना चाहिए। पर मनुष्यने इतनेसे ही संतोष नहीं किया। रंधनके सुधार (या बिगाड़) के स्वीकारके बाद वह जीभकी उपासनामें फंसा और अनेक मसाले और पकवानके प्रकार खोज निकाले। शरीरके निर्वाहके लिए दवाके तौरपर ही जिसकी जरूरत समझी जानी चाहिए थी वह वस्तु जीवनका एक महत्त्वका व्यवसाय बन गयी है और उसके पीछे जीवनका बड़ा समय और शक्ति बरबाद होती है।

१०. आरोग्यकी दृष्टिसे, विकारोंकी दृष्टिसे, और समयकी दृष्टिसे भी मसालों और विविध प्रकारके व्यंजनोंका उपयोग दोषरूप और त्याज्य है।

११. साग-तरकारी और फल हम हिंदुस्तानमें जितना खाते हैं, उससे अधिक परिमाणमें खानेकी आवश्यकता है। विशेष करके टमाटर, मूली, ककड़ी आदि तरकारियां तथा पत्र-शाक बिना पकाये खाना जरूरी है। खुराकमें दालकी अपेक्षा सब्जी—खासकर बिना पकायी ताजी हरी सब्जी—की ज्यादा जरूरत है।

१२. चाय और कहवा (काफी) बिलकुल नये व्यसन हैं। ऐसे किसी पेयकी हम लोगोंको आदत ही नहीं थी। इन पेयोंसे कोई लाभ नहीं हुआ है। ये दोनों हानिकारक पदार्थ हैं। चायकी खेती मानव-हिंसासे भरी हुई है। इन पेयोंने भोजन-खर्च व्यर्थ बढ़ा रक्खा है। इनकी बदौलत देहातमें दूध रहने नहीं पाता और चीनीके उपयोगमें हानिकारक वृद्धि हुई है।

१३. कितने ही अनुभवियोंका मत है कि चाय, कहवे, तमाखू, भांग, गांजे, अफीम वगैराका कोई व्यसनी स्थिरवीर्यताका दावा करे तो वह माना नहीं जा सकता।

६

व्यायाम

१. बचपनसे जिसे आवश्यक शारीरिक श्रम करना पड़ता है उसे अखाड़ेकी कसरतोंकी क्वचित् ही जरूरत होती है।

२. अखाड़ेकी कसरतें खास करके बैठकर करनेके धंधे करनेवालों, सिपाहीगिरी करनेवालों और उदर-निर्वाहके लिए पहलवानी करनेवालोंके लिए हैं।

३. अखाडेकी कसरतोंसे मनुष्य दीर्घायु और निरोग अथवा बहादुर और श्रम-सहिष्णु बनता ही है ऐसा नहीं देखा जाता। ऐसे बहुतसे कसरती देखनेमें आते हैं जो शरीरसे पहलवान होते हुए भी हृदयके कायर हैं और कसरतके सिवा दूसरे शारीरिक कष्ट तथा सर्दी-गर्मीके प्रभावोंसे ढीले पड़ जाते हैं।

४. अखाड़ेकी कसरतें विकारवर्द्धक हैं, क्योंकि उनके परिणाम-स्वरूप

साधारणतः शरीरमें गरमी बढ़ती है और भोजन तथा भोगकी शक्ति वेग-वान हो जाती है ।

५. फिर भी अखाड़ेकी कसरतोंका एकबारगी निषेध करना अभीष्ट नहीं है । दूसरी तालीमोंकी तरह उनका भी मर्यादित स्थान है ।

६. संघ-व्यायाम—कवायद—बहुत उपयोगी तालीम है और उसकी सब युवक-युवतियोंको जरूरत है ।

७. सात्विक कसरतोंमें शरीरकी तंदुरुस्तीके लिए महत्त्वकी कसरत चलना है । यह जो व्यायामोंका राजा कहा गया है वह यथार्थ है ।

८. इसके बाद आसन और प्राणायाम सात्विक व्यायाम माने जा सकते हैं; क्योंकि इन व्यायामोंका प्रधान उद्देश्य शरीरको भोगी नहीं बल्कि शुद्ध बनाना है । इनसे कितनी ही बीमारियां भी दूर होती हैं ।

९. पर इन व्यायामोंको भी जीवनका व्यवसाय बनाना और उनसे सिद्धियां मिलनेकी जो बात कही जाती है उसके पीछे पड़ना इनका दुरुपयोग है । शरीरमें संचित अशुद्धियोंको जैसे मल-मूत्र द्वारा निकाल डाला जाता है वैसे ही उसकी अन्य अशुद्धियोंको आसन और प्राणायाम द्वारा निकाल डालना, यही इन व्यायामोंका प्रयोजन है ।

खंड ११ :: शिक्षा

१

शिक्षाका ध्येय

१. **सा विद्या या विमुक्तये।** जो मुक्तिके योग्य बनाये वह विद्या; बाकी सब अविद्या।

२. अत: जो चित्तकी शुद्धि न करे, मन और इंद्रियोंको वशमें रखना न सिखाये, निर्भयता और स्वावलंबन पैदा न करे, निर्वाहका साधन न बताये और गुलामीसे छूटने और आजाद रहनेका हौसला और सामर्थ्य न उपजाये उस शिक्षामें चाहे जितनी जानकारीका खजाना, तार्किक कुशलता और भाषा-पांडित्य मौजूद हो वह शिक्षा नहीं है या अधूरी शिक्षा है।

२

अराष्ट्रीय शिक्षा

१. ८०-८५ फी सदी लोगोंके जीवनकी आवश्यकताओंका विचार करनेके बजाय मुट्ठीभर मनुष्योंकी आवश्यकताओं अथवा राज्यके थोड़ेसे विभागोंकी आवश्यकताओंको ही ध्यानमें रखकर दी जानेवाली शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा तो हो सकती ही नहीं, बल्कि गलत शिक्षा होनेसे अविद्या ही है।

२. ऐसी शिक्षाने शिक्षित और अशिक्षितके बीच गहरी खाई खोद दी है, और विद्वानोंको जनताका अगुआ, पथ-प्रदर्शक और प्रतिनिधि बनानेके बजाय जनतासे विलग हो जानेवाला, जनताके जीवन और भावनाओंको न समझनेवाला, उसमें दिलचस्पी न ले सकनेवाला और उनका पक्ष उपस्थित करनेके अयोग्य बना दिया है।

३. इस शिक्षाने अपना महत्त्व बढ़ानेके लिए भवनों, साधनों,

पुस्तकों, मृगतृष्णाकी भांति दूरसे लुभावने लगनेवाले लाभोंकी आशाओं और चटक-मटक वगैराका आडंबर रचकर जनताको कर्जमें डुबो दिया है।

४. इस शिक्षाने लोगोंके अंदर अनेक वहम पैदा कर दिये हैं। जैसे अक्षर-ज्ञान और शिक्षा एक ही है और उसके बिना शिक्षा हो ही नहीं सकती; शिक्षित मनुष्यका मजदूरका-सा जीवन बिताना तो अपनी शिक्षाको लजाना समझा जायगा; 'शिक्षितका' मतलब है अंग्रेजी पढ़ाहुआ, आदि।

५. इस शिक्षाने जनताको धर्मसे विमुख किया है, और अनेक पीढ़ियोंसे पोषित धर्म तथा संयमके संस्कारोंको मिटा डालनेका ही काम किया है।

६. चित्त-शुद्धिके महत्त्वके अंग—ईश्वर, गुरु, बड़े-बूढ़ोंमें भक्ति, नीतिमय जीवनका आग्रह और संयम तथा तपमें श्रद्धा—इन सभी विषयोंमें आधुनिक शिक्षाने पढ़े-लिखोंको सशंक और नास्तिक बना देनेकी दिशामें यत्न किया है।

७. यदि पूर्वोक्त परिणामोंसे कुछ लोग बच गये हैं तो वह शिक्षाके कारण नहीं बल्कि वैसी शिक्षा पाकर भी घरके उच्च वातावरणकी बदौलत बचे हैं।

८. इस शिक्षामें भोग और संपत्तिमें इतनी श्रद्धा उत्पन्न करदी है कि उनके कम होनेके डरसे ही शिक्षित पस्तहिम्मत हो जाते हैं और स्पष्ट रूपसे दिखाई देनेवाले धर्मके आचरणमें असमर्थता प्रकट करते हैं।

३

राष्ट्रीय शिक्षा

१. हिंदुस्तानकी राष्ट्रीय शिक्षाकी व्यवस्था हिंदुस्तानके ८० से ८५ फीसदी लोगोंको किस प्रकारका जीवन बिताना पड़ता है, इस विचारको सामने रखकर होनी चाहिए।

२. हिंदुस्तानके ८५ फीसदी लोग प्रत्यक्ष या परोक्षरूपसे खतीसे गुजर करते है; इसलिए उनकी शिक्षाकी योजना उन्हें अच्छे किसान बना देने और खेतीके आसपास चलनेवाले धंधोंकी जानकारी करा देने की दृष्टिसे होनी चाहिए।

३. शिक्षासे निर्वाहका प्रश्न हल होना चाहिए, अतः उद्योग-धंधोंकी शिक्षा शिक्षणका प्रधान अंग होना चाहिए।

४. जनताके निर्वाहका मसला हल किये बिना संस्कार (Culture) या ईश्वरका ज्ञान देनेवाली शिक्षाकी बात करना बेकार है।

५. ऐसी शिक्षा खेतमें या देहातमें ही दी जा सकती है—कस्बों या शहरोंमें यह शिक्षा नहीं मिल सकती।

६. इसके सिवा पढ़ना-लिखना आनेके पहले शिक्षा-प्राप्ति हो ही न सकती हो तो हिंदुस्तानकी जनताको शिक्षित बनानेमें कई दशक लगेंगे।

७. पर अक्षर-ज्ञान (पढ़ने-लिखनेके ज्ञान) का विरोध न करते हुए भी यह कहना जरूरी है कि शिक्षा उसके बिना भी दी जा सकती है और दी जानी चाहिए।

८. लिखने-पढ़नेका ज्ञान न होते हुए भी मनुष्य गिनना सीख सकता है, अपने उद्योग-धंधे-संबंधी प्राथमिक विज्ञान प्राप्त कर सकता है, साहित्य समझ सकता है, सुन सकता है और कंठ कर सकता है, और शक्तिशाली हो तो रचना भी कर सकता है। इसके सिवा उसमें सत्यकी लगन हो तो ईश्वरका ज्ञान भी प्राप्त कर सकता है।

९. हमारे सैकड़ों पढ़े-लिखोंका ज्ञान-भंडार—अनेक पोथियोंके पन्ने उलटनेके बाद भी—इतना अल्प होता है कि इतनी पूंजी प्राप्त करनेके लिए लाखों लोगोंको लिखना-पढ़ना सीखनेकी माथापच्चीमें पड़नेकी सलाह देनेके बजाय यदि वे अपना ज्ञान उन्हें जबानी दें तो देखेंगे कि बहुत वर्षोंकी पढ़ाई वे थोड़े ही वक्तमें जनतातक पहुंचा सकते हैं।

१०. इसके सिवा भारतवर्षकी शिक्षाकी पद्धति बिना खर्चकी ही होनी चाहिए।

११. अतः थोड़े वर्षोंमें यह शिक्षा पूरी हो जानेका मोह हमें न

होना चाहिए। उद्योग करते और आजीविका प्राप्त करते हुए यह शिक्षा जन्म-भर चल सकती है।

१२. यह शिक्षा पुस्तकोंपर कम-से-कम अवलंबित होगी। इसका यह अर्थ नहीं कि पुस्तकें रहें ही नहीं, किंतु वाचनकी अपेक्षा वह श्रवण, दर्शन और क्रियाके द्वारा अधिक दी जानी चाहिए।

४

उद्योग द्वारा शिक्षा

१. शिक्षाका आरंभ अक्षर-ज्ञानसे और लेखन-वाचन द्वारा नहीं, बल्कि उद्योगसे और उसके द्वारा होना चाहिए।

२. उद्योग ऐसा होना चाहिए जिससे निर्वाह होसके, उससे उत्पन्न होनेवाली वस्तु जनताके जीवनमें उपयोगी हो।

३. ऐसी वस्तुका उत्पादन कराते हुए उस उद्योगके साथ संबंधित साहित्य, गणित, विज्ञान, चित्रकारी, इतिहास, भूगोल आदि आवश्यक विज्ञानोंका जितना हो सके उतना ज्ञान बालकको करा देना चाहिए। इस प्रकार उद्योगको शिक्षाका केवल एक विषय ही नहीं बल्कि लगभग सारी शिक्षाका अर्थात् मानस-विकासका वाहन भी बनना चहिए।

४. इस तरह उद्योग द्वारा शिक्षा देनेवाली पाठशाला जबतक शिक्षकोंका खर्च न निकाल सके तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि उस पाठशाला तथा उसके विद्यार्थियोंने अच्छी प्रगति करली।

५. खेती और वस्त्र ये दो भारतके राष्ट्रीय उद्योग हैं; अतः प्रत्येक पाठशालामें इन दोनों धंधोंकी प्रारंभिक शिक्षाका प्रबंध होना चाहिए।

६. इन दोनों उद्योगोंका प्रारंभिक ज्ञान सबके लिए अनिवार्य होना चाहिए, क्योंकि इनके द्वारा जिसे जीविका नहीं कमानी है उनके लिए भी पूर्ण शिक्षाकी दृष्टिसे इनका ज्ञान आवश्यक है।

७. बढ़ई, लुहार, रंगरेज आदिके धंधे खेती और वस्त्र-उद्योगोंके सहायक-रूपमें और उनके सहारे चलते हैं। इसलिए हरएक किसान और बुनकरको इनका भी सामान्य ज्ञान करा देना चाहिए।

८. गन्ने, नील, तेलहन आदिकी खेती तथा आस-पासके जंगलोंमें होनेवाली वनस्पतियोंसे अनेक प्रकारके उद्योगोंका पोषण हो सकता है। इन उद्योगोंकी खोज करके उनकी भी शिक्षा उन स्थानोंमें देनी चाहिए।

५

बालशिक्षा

१. बालकोंकी शिक्षाका श्रीगणेश अक्षर-ज्ञानसे नहीं बल्कि सफाई की शिक्षासे होना चाहिए।

२. शिक्षक (बल्कि शिक्षिका) को चाहिए कि बालकको कक्का-किक्की सिखानेकी जल्दी न करें, बल्कि उसे अपने हाथ, पांव, नाक, आंख, दांत, नाखून आदिको साफ रखना सिखाये। उसे नहाना, कपड़े धोना तथा रूमालसे नाक वगैरा पोंछना सिखाये।

३. इसके बाद वह बच्चेके हाथमें तकली और चरखा दे और कातनेतककी सब क्रियाएं धीरजसे बताये और उनकी मश्क करा दे।

४. इसके सिवा जबतक लिखना-पढ़ना न आये तबतक वह उसे अज्ञान नहीं बनाये रक्खे; बल्कि कहानियों द्वारा इतिहास-भूगोलका ज्ञान दे, कथाओं और भजनों द्वारा धर्मका ज्ञान दे, प्रत्यक्ष अवलोकनसे पदार्थ-विज्ञान, वनस्पतियों और भूमि तथा आकाशका ज्ञान दे एवं प्रत्यक्ष पदार्थोंसे गणितमें प्रवेश कराये और इस तरह लिखना-पढ़ना आनेके पहले उसे तीसरी-चौथी पोथीतकका ज्ञान करा दे।

५. इसके सिवा अक्षर लिखानेके पहले उसे चित्र और अक्षरोंकी आकृतियां बनाना तथा अपने विचारोंको चित्रोंके द्वारा प्रदर्शित करना सिखाये।

६. अनेक भजन, श्लोक, कविताएं उसे कंठाग्र कराके उच्चार-शुद्धि करा ले और नाना प्रकारका साहित्य उसे कंठ करा दे।

७. फिर वह उसे सुंदर आकृतिवाले और स्पष्ट पढ़े जा सकनेवाले

अक्षर लिखना सिखाये। इस प्रकार अक्षर लिखानेमें की हुई देरसे नुकसान न होकर बच्चेकी शक्ति बढ़ी मालूम होगी।

६

ग्रामवासीकी शिक्षा

१. इस वहमको दिमागसे निकाल डालनेकी जरूरत है कि देहातके बड़ी उम्रके सभी मनुष्य अक्षरज्ञान पाकर ही शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

२. जिनमें शक्ति और उत्साह हो उन्हें अक्षरज्ञान करानेका प्रयत्न करना इष्ट है। उन्हें प्रोत्साहन देना चाहिए और उनके लिए पूरी सुविधा भी करनी चाहिए।

३. पर बहुतसे आदमियोंको बड़ी उम्रमें लिखना-पढ़ना सीखनेमें रस आना कठिन है। अतः ऐसा नहीं होना चाहिए कि ऐसे लोग प्रौढ़-पाठशालाओंमें आ ही न सकें।

४. देहातका पुस्तक-भंडार सीमित ही रहेगा और देहातियोंकी पुस्तक खरीदनेकी शक्ति तो उससे भी कम होगी; अतः थोड़ा-बहुत लिखना-पढ़ना आजानेसे अपने आप ज्ञान बढ़ा लेनेकी बहुत शक्ति आजाती हो ऐसा अनुभव नहीं होता।

५. अतः जो पढ़े हैं वे दूसरोंको पढ़कर सिखायें और समझायें तथा उनके लिए व्याख्यान वगैराकी व्यवस्था करें तो देहातमें पढ़ेके लिए अपना ज्ञान बढ़ानेकी जितनी संभावना है उतनी बेपढ़ेके लिए भी हो सकती है।

६.पढ़ना-लिखना आनेसे समझनेकी शक्ति बढ़ती है, ऐसी बात नहीं है। अक्सर बुद्धिमान देहाती सुनकर जो ज्ञान पा लेता है वह पढ़े हुए आदमीकी अपेक्षा अधिक होता है।

७. ज्ञानका मूल स्रोत पुस्तकोंमें नहीं है बल्कि अवलोकन, अनुभव और विचार-शक्तिमें है---इसे भूल जानेसे हम पुस्तकके ज्ञानको बहुत महत्त्व देते हैं।

७

स्त्रीशिक्षा

१. पुरुषकी भांति स्त्रीको भी शिक्षाका पूरा अधिकार है। और पुरुषको जैसी शिक्षा पानेकी अनुकूलता हो वैसी स्त्रीको भी होनी चाहिए।

२. पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीका दर्जा और अधिकार कम है इस संस्कारको निर्मूल कर देना चाहिए।

३. पुरुष-जैसी शिक्षा पानेमें स्त्रीके लिए रुकावट नहीं होनी चाहिए; तथापि ९० फीसदी स्त्रियोंको मातृपद प्राप्त करना और घर-गृहस्थीके काममें पड़ना होगा इसका खयाल रखकर स्त्री-शिक्षाकी योजना होनी चाहिए।

४. अर्थात् जैसे जिस पुरुषको किसान या बुनकर न बनना हो उसे भी ८५ फी सदी लोगोंके धंधेका प्राथमिक ज्ञान होना चाहिए वैसे ही जिस स्त्रीको मातृपद प्राप्त न करना या गृहस्थी न चलानी हो उसे भी मातृपद तथा गृहिणी-कर्मसे संबंधित शिक्षा मिलनेकी जरूरत है।

८

धार्मिक शिक्षा

१. धार्मिक शिक्षासे रहित शिक्षा शिक्षा नामकी अधिकारिणी ही नहीं समझी जा सकती।

२. प्रत्येक बालकको जिस धर्ममें वह जन्मा हो उस धर्मके मुख्य ग्रंथों, महापुरुषों और संतों तथा उस धर्मके मंतव्योंका श्रद्धापूर्वक ज्ञान करा देना चाहिए।

३. यहां धर्मका अर्थ वैदिक, इस्लाम, ईसाई, यहूदी, पारसी, सिख, जैन, बौद्ध इत्यादि मुख्य धर्म ही समझना चाहिए; उनके संप्रदाय या उपशाखाओंका समावेश उसमें नहीं होता। संप्रदायों और उपशाखाओंके संस्कार तो उनकी खास संस्थाएं ही दे सकती हैं।

४. बालकको उसके अपने धर्मके अलावा दूसरे महान् धर्मोंका भी समभाव-पूर्वक सामान्य ज्ञान देनेका प्रयत्न करना चाहिए।

५. मनुष्यको जैसे शरीरके लिए आहार, श्रम और आरामकी जरूरत है वैसे ही उसके चित्तकी उन्नतिके लिए धर्मके आलंबनकी आवश्यकता है। प्रत्येक धर्म ऐसे आलंबनकी पूर्ति करनेमें समर्थ है, इसलिए किसीको धर्म बदलनेकी आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक धर्म मनुष्य-प्रचारित है इससे उसमें दोष हैं और पैदा भी होते रहते हैं, और उसे बारंबार शुद्ध करनेकी जरूरत होती है; फिर भी कोई धर्म सर्वथा त्याज्य नहीं होता। धार्मिक शिक्षाके फलस्वरूप यह संस्कार उत्पन्न हो यह दृष्टि हमें रखनी चाहिए।

६. भिन्न-भिन्न मानव-समाजोंमें भिन्न-भिन्न धर्मोंकी उत्पत्ति होनेके कारण उनमें समाज-रचना, विधि-विधान तथा रूढ़ियोंके परस्पर-विरोधी दिखाई देनेवाले भेद रहते हैं। फिर भी प्रत्येक धर्ममें इतनी बातें सामान्यरूपसे मिलती हैं—(१) सत्यरूपी परमेश्वरकी खोज और उसका आश्रय, (२) नीति-परायण तथा संयमी जीवन, (३) दूसरोंके लिए कष्ट-सहन तथा स्वार्थकी अपेक्षा दूसरोंका हित अधिक देखनेकी वृत्ति। इन संस्कारोंका निरंतर बड़े क्षेत्रमें विकास होना धार्मिक जीवनका विकास है। अतः धार्मिक शिक्षामें इन अंगोंका महत्त्व समझाकर बाह्य भेदोंको गौण समझना सिखाया जाना चाहिए।

६

शिक्षाका वाहन

१. उच्च-से-उच्च शिक्षातकके लिए स्वभाषा ही शिक्षाका वाहन या माध्यम होना चाहिए।

२. अंग्रेजी जैसी अति विजातीय भाषाको शिक्षाका वाहन बना देनेसे शिक्षाके लिए किया गया और किया जानेवाला बहुतेरा श्रम व्यर्थ गया और जा रहा है।

३. अंग्रेजीके ज्ञानके बिना उच्च शिक्षा प्राप्त की जा सकती ही नहीं, यह स्थिति दयनीय और लज्जाजनक है।

४. शिक्षा घर और गांवोंतक नहीं पहुंच सकी इसका एक कारण यह भी है कि वह स्वभाषाके द्वारा नहीं मिली।

५. अंग्रेजीके शिक्षाका वाहन बना दिये जानेसे देशकी भाषाओंकी वृद्धि नहीं हुई और शिक्षितोंकी स्वभाषा-सेवाका प्रायः इतना ही फल हुआ है कि अंग्रेजीमें किये हुए विचार संस्कृत या फारसीमें अनुवाद करके स्वभाषाके प्रत्यय लगाकर काम में लाये जायं। इससे यह साहित्य आम जनतामें अधिक नहीं पहुंच सका और न उसपर असर डाल सका है।

६. पर-भाषाके वाहन बननेका यह दुष्परिणाम हुआ है कि बहुतेरे शिक्षित जन विचार भी अंग्रेजीमें ही कर सकते हैं, स्वभाषामें कर ही नहीं सकते। यह स्थिति खेद-जनक है।

७. गुजरात विद्यापीठ जैसी छोटी-सी संस्थामें भी गुजरातीको शिक्षाका वाहन बना देनेसे गुजाराती भाषाकी कितनी समृद्धि हुई है, पिछले कुछ वर्षोंका साहित्यका इतिहास इसका निदर्शक है।

८. लोकमान्यके मराठी भाषाके द्वारा ही अपने प्रांतकी सेवा करनेसे उस भाषाकी जो समृद्धि हुई है वह भी इसी बातकी गवाही देती है।

१०

अंग्रेजी भाषा

१. अंग्रेजी भाषाके ज्ञानके बिना शिक्षा अधूरी रहती है इस वहमसे निकलनेकी जरूरत है।

२. अंग्रेजी पढ़े लोगोंका कर्तव्य है कि अंग्रेजी भाषाके विशाल साहित्यसे सुंदर रत्न चुन-चुनकर अपनी-अपनी भाषामें लायें। इन रत्नोंका आनंद लेनेके लिए लाखोंको अंग्रेजी भाषा सीखनेके झंझटमें पड़नेको कहना निर्दयता है।

३. काम-काजमें अंग्रेजी भाषाकी जरूरत पड़ती है यह सही है, पर ऐसे काम-काज तो मुट्ठीभर आदमियोंको ही करने पड़ते हैं। फिर

उनमेंसे बहुतसे काम तो अकारण अथवा हमारी गुलामीकी वजहसे ही अंग्रेजीमें होते हैं। थोड़ेसे अंग्रेज अधिकारियोंको देशी भाषा सीखनेकी मेहनतसे बचानेके लिए सारी जनतापर अंग्रेजी सीखनेका बोझ लादना, यह भी देशकी ओरसे ब्रिटिश राज्यको दिया जानेवाला एक प्रकारका भारी कर ही है।

४. अंग्रेजी भाषाको अनिवार्य बनाकर ब्रिटिश राज्यने अपनी जड़ मजबूत की है, और भाषाकी गुलामी स्वीकार कराके जनताको शरीरसे ही नहीं मनसे भी गुलाम बना दिया है। हथियार छीन लेनेसे जनता-को जो हानि हुई है उतनी ही या उससे रत्तीभर अधिक ही हानि उसपर अंग्रेजीको लादनेसे हुई है।

५. अंग्रेजी भाषाके ज्ञानके बिना देशके महत्त्वके कामोंमें भाग नहीं लिया जा सकता, इस तरह उसकी शिक्षा जो अनिवार्य-सी कर दी गयी है वह शिक्षा-शास्त्र तथा नीतिकी दृष्टिसे अत्यंत हानिकर है।

६. यूरोपकी विद्या सीखनेके लिए यूरोपकी किसी भाषाका ज्ञान आवश्यक माना जाय तो उतने उपयोगके लिए जितना ज्ञान जरूरी है उसके लिए आज जितना समय और साल देने पड़ते हैं उतने न देने पड़ेंगे। इस भाषा-ज्ञानका लक्ष्य तो उस भाषाको समझ लेने-भर सीख लेना होगा। आज तो अंग्रेजी भाषाके लेखन और उच्चारणपर अधिकार करनेके लिए इतना प्रयास किया जाता है मानो वह अपनी मातृभाषा या उससे भी अधिक महत्त्व रखनेवाली वस्तु हो। और अनेक वर्षोंतक मिहनत करनेके बावजूद अधिकांश तो टूटी-फूटी अंग्रेजी लिखने-बोलने लायक ही अधिकार प्राप्त कर पाते हैं।

७. हम स्वभाषा या पड़ोसी प्रांतकी भाषाको शुद्ध बोल-लिख न सकें तो न शर्मायें और अंग्रेजी भाषामें होनेवाली भूलोंसे शर्मायें अथवा वैसी भूलें करनेवालोंका मजाक उड़ायें, इससे पता चलता है कि उस भाषाने हमपर कैसा जादू डाल रक्खा है। वास्तवमें अंग्रेजी के अत्यंत विजातीय भाषा होनेके कारण उसके उच्चारण और लेखन में हमसे गलतियां हों तो इसमें कोई अचरजकी बात नहीं।

८. पर इस जादूके कारण हम शिक्षाकालके आधे या बहुतसे बरस इस भाषापर अधिकार पानेके पीछे बर्बाद कर देते हैं। विद्यार्थी के कितने ही श्रम और समयका इस प्रकार अपव्यय होता है।

११

भाषाज्ञान

१. व्यवस्थित शिक्षामें भाषाके विषयोंमें पहला स्थान स्वभाषाको मिलना चाहिए। स्वभाषामें शुद्ध लिखना, पढ़ना, और बोलना आये बिना अंग्रेजी जैसी अति विजातीय भाषाकी शिक्षा आरंभ होनी ही न चाहिए।

२. स्वभाषाके बाद दूसरा स्थान राष्ट्रभाषा यानी हिंदुस्तानीका होना चाहिए। इसके विषयमें आगे अधिक कहा जायगा।

३. तीसरा स्थान मूलभाषाको मिलना चाहिए। मूलभाषाका अर्थ है हिंदू विद्यार्थियोंके लिए संस्कृत, मुसलमान विद्यार्थियोंके लिए अरबी या फारसी, पारसियोंके लिए पहलवी इत्यादि। स्वभाषा और स्वधर्मकी जड़ इन भाषाओंमें होनेके कारण इनके ज्ञानका बहुत महत्त्व है और सम्यक् शिक्षा प्राप्त मनुष्यको इनका साधारणतः अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

४. भाषाएं सीखनेकी जिनमें शक्ति और रुचि है उनके लिए हिंदुस्तानकी कुछ प्रांतीय भाषाएं सीखना भी आवश्यक है। खास करके द्राविड़ी भाषाओंमेंसे एकाधके सीखनेका प्रयत्न करना चाहिए। संस्कृत-मूलक भाषाओंमेंसे तो एकाध आनी ही चाहिए।

५. शिक्षाकी दृष्टिसे अंग्रेजीका नंबर इसके बाद आता है। पर व्यावहारिक दृष्टिसे उसका मूल्य अधिक आंका गया है; फिर भी उसका स्थान स्वभाषा, राष्ट्रभाषा और मूलभाषाके बाद ही होना चाहिए।

१२

राष्ट्रभाषा

१. हिंदुस्तानी—अर्थात् हिंदी और उर्दू दोनोंकी खिचड़ी—दिल्ली, लखनऊ, प्रयाग जैसे शहरोंमें आम लोगोंमें बोली जानेवाली भाषा—हिंदुस्तानकी राष्ट्रभाषा है। दक्षिण भारतकी जनताके सिवा यह साधारणतः सारे देशमे सैकड़ों वर्षोंसे बरती जा रही है।

२. हर शिक्षित मनुष्यको यह भाषा शुद्ध रूपमें बोलना, लिखना और पढ़ना आना चाहिए।

३. यह भाषा नागरी और उर्दू दोनों लिपियोंमें लिखी जाती है; दोनों लिपियोंका ज्ञान हरएकको होना इष्ट है।

४. राष्ट्रभाषा सीखनेकी सलाह प्रांतीय भाषाको गौण बनानेके लिए नहीं दी जाती, उसकी आवश्यकता तो सार्वदेशिक व्यवहारके लिए है। हिंदुस्तानीको राष्ट्रभाषाका पद नया नहीं मिला है, बल्कि जो बात व्यवहारमें है उसीको स्वीकार किया गया है।

१३

इतिहास

१. इतिहास विषयकी शिक्षा गलत दृष्टिबिंदुसे दी जाती है। अतः इतिहासके रूपमें पढ़ायी जानेवाली घटनाएं भले ही सच हों पर जनसमाजकी भूतकालकी स्थितिके बारेमें वे गलत धारणा उत्पन्न कराती हैं।

२. राजवंशोंको उथल-पुथल और युद्धोंके वर्णन राष्ट्रका इतिहास नहीं है। हिंदुस्तान जैसे राष्ट्रका तो नहीं ही हो सकते। यह तो राष्ट्र-शरीरपर कभी-कभी उठ आनेवाले फफोलोंका-सा इतिहास माना जायगा। राष्ट्र-जीवनमें युद्ध नित्य-जीवन नहीं है किंतु उल्कापात है। उसके नित्य-जीवनमें समझौता, भाईचारा, एक-दूसरेके लिए कष्टसहन और सहयोग होता है। उनके द्वारा होनेवाली प्रगतिका वर्णन इतिहास बहुत गौणरूपमे करता है और इस कारण वह भूतकालके संबंधमें भ्रमात्मक चित्र प्रस्तुत करता है।

३. इस रीतिसे इतिहासकी जांच की जाय तो उसके नित्य-व्यवहार-में हिंसामय कलहकी अपेक्षा अहिंसामय सत्याग्रहका प्रयोग अधिक हुआ दिखाई देगा।

४. पर इतिहासके शिक्षणमें इतना ही दोष नहीं है। आजकल तो इतिहासकी शिक्षा जान-बूझकर इस तरह दी जाती है जिससे गलत खयाल पैदा हो, इसलिए अंग्रेजोंके आनेके पहलेके कालका बहुत बुरा चित्र खींचा जाता है और अंग्रेजी-राज्यके प्रति जनता मोह-मूर्छामें पड़ी रहे इसको बचपनसे ही कोशिश की जाती है। इसमें असत्य ही नहीं बेईमानी भी है।

१४

शिक्षाके अन्य विषय

१. संगीतकी शिक्षापर हिंदुस्तानमें बहुत ही कम ध्यान दिया गया है। संगीत चित्तके भावोंको जाग्रत करनेका बहुत बड़ा साधन है और इस प्रकार सात्विक संगीतका आध्यात्मिक विकासमें महत्त्वका स्थान है। बालककी इस महत्त्वपूर्ण प्राकृतिक शक्तिका सात्विक रीतिसे विकास करना चाहिए।

२. कर्मेंद्रियोंके और समूहोंके कार्यमें कवायदके ज्ञानके अभाववश अव्यवस्था, शक्तिका आवश्यकतासे अधिक व्यय, गड़बड़ और शोरगुल तथा बहुत मौकोंपर जान-मालका नुकसान भी होता है। कवायदके ढंगसे ही उठने, चलने और काम करनेकी, और चार आदमियोंके एकत्र होते ही कवायदी ढंगसे व्यवस्थित होकर काम करने लगजानेकी आदत पड़ जानी चाहिए। अतः कवायदकी तालीमकी ओर पाठशालाओंमें भलीभांति ध्यान दिया जाना चाहिए और बड़ी उम्रके लोगोंको भी इसकी तालीम देनी चाहिए।

३. शस्त्रका त्याग हिंदुस्तानमें जबरन कराया गया है, हिंदुस्तानकी जनताने उसे अपनी इच्छासे नहीं किया है। शस्त्र धारण करने

और सैनिक शिक्षा पानेका जनताको अधिकार है। इसलिए इसकी तालीम भी शिक्षाका आवश्यक विषय है।

१५

शिक्षक

१. शिक्षकका चरित्र चाहे जैसा हो, उसे केवल अपने विषयमें प्रवीण होना चाहिए—यह विचार दोषपूर्ण है।

२. चारित्रहीन पर प्रवीण शिक्षकसे पढ़कर विद्यार्थी किसी विषयमें प्रवीणता प्राप्त करे इससे यह हजार गुना अच्छा है कि वह चारित्रवान किंतु कम प्रवीण शिक्षककी शिष्यता स्वीकार कर थोड़ी ही विद्या प्राप्त करे।

३. जो शिक्षक अपना विषय पढ़ानेकी जिम्मेदारी समझता है पर विद्यार्थीके चारित्रके विषयमें अपनी जिम्मेदारी नहीं मानता उसे शिक्षक कह ही नहीं सकते।

४. आदर्श शिक्षकको विद्यार्थीकी पढ़ाईमें ही नहीं बल्कि उसके सारे जीवनमें दिलचस्पी लेना और उसके हृदयमें प्रवेश करनेका प्रयत्न करना चाहिए।

५. ऐसा शिक्षक विद्यार्थीको भयानक या यमराज जैसा नहीं लगेगा, बल्कि पूज्य होते हुए भी मातासे अधिक निकट मालूम होगा।

६. शिक्षकको अपनी योग्यता बढ़ानेके लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए; और अपने विषयोंमें ताजा-से-ताजा जानकारी प्राप्त करके और तैयार होकर ही क्लास लेना चाहिए।

७. अर्थात् शिक्षकको विद्यार्थीसे भी अधिक अच्छा विद्यार्थी-जीवन बिताना और अध्ययनरत रहना चाहिए।

८. पूरी तैयारी किये बिना क्लास लेनेवाला शिक्षक विद्यार्थीका अमूल्य समय बर्बाद करता है।

९. शिक्षकको पढ़ानेकी अच्छे-से-अच्छी रीति खोजते ही रहना चाहिए और प्रत्येक विद्यार्थीकी विशेषताको समझकर ऐसी विधि ढूंढ

निकालनी चाहिए जिससे वह अपने विषयको समझने और उसमें रस लेने लगे। विद्यार्थियोंको शंकाका अवसर देकर उनका समाधान करना चाहिए।

१०. मारने, गाली देने, तिरस्कार करने या और कोई सजा देनेकी शिक्षकोंको मनाही होनी चाहिए।

११. अपना काम भलीभांति करनेकी इच्छा रखनेवाला शिक्षक बहुत बड़े वर्गोंपर ध्यान न दे सकेगा यह स्पष्ट है।

१२. सैकड़ों विद्यार्थियोंकी पाठशालाएं भी इष्ट नहीं हैं।

१६

विद्यार्थी

१. विद्याकी शोभा विनयसे है, इतना ही नहीं विनयके बिना विद्या आती भी नहीं।

२. विद्यार्थीको शिक्षकके प्रति गुरुभाव रखना अर्थात श्रद्धा, विनय और सेवा-भावसे व्यवहार करना चाहिए। शिक्षक जो कहता है मेरे हितके लिए कहता है, यह श्रद्धा उसे रखनी चाहिए।

३. शिक्षक ऐसी श्रद्धाके योग्य नहीं है यह निश्चय होजाय तो विनयको न छोड़कर शिक्षकका ही त्याग करना चाहिए।

४. विद्यार्थीको शिक्षकसे प्रश्न करके अपनी शंकाएं मिटानी चाहिए।

५. विद्यार्थीको ऐसी अधीरता न दिखानी चाहिए मानो शिक्षकके पेटसे वह सारा ज्ञान निकाल लेना चाहता है। जिसने विनयसे शिक्षकका मन प्रसन्न किया है उसे अपना सारा ज्ञान देनेकी शिक्षकमें ही अधीरता उत्पन्न होजाती है। जबतक शिक्षकका मन ऐसा नहीं होजाता तबतक विद्यार्थीको धीरज रखना चाहिए।

६. पर शिक्षक जब ज्ञानकी वृष्टि करने लगे तब विद्यार्थीको गाफिल रहकर मौका गंवाना नहीं चाहिए।

१७

छात्रालय

१. छात्रालयके मानी विद्यार्थीके रहने-खानेका सुभीता कर देनेवाला बासा नहीं है।

२. छात्रालयका महत्त्व पाठशालासे भी अधिक है। वह तो माता-पिताके घरकी जगह लेनेवाला होना चाहिए; बल्कि माता-पिताके घरमें जो संस्कार नहीं मिल सकते उन्हें देनेकी अभिलाषा उसे रखनी चाहिए।

३. अतः छात्रालयका गृहपति पाठशालाके आचार्य या वर्ग-शिक्षककी अपेक्षा भी अधिक योग्य व्यक्ति होना चाहिए। उसमें शिक्षकके सिवा माता-पिताके गुण भी होने चाहिए।

४. उसकी निगाह विद्यार्थियोंके हरएक काम और संग-साथपर पड़ती रहनी चाहिए।

५. लड़के जहां इकट्ठे रहने हैं वहां प्रकट और गुप्त दोष दिखाई देते रहते हैं। गृहपतिको इनके विषयमें बहुत चौकन्ना रहना चाहिए।

६. छात्रालयमें पंक्तिभेद न होना चाहिए।

७. जहांतक हो सके छात्रालयमें नौकर-चाकर न होने चाहिए और विद्यार्थियोंको अपने निजी काम तो खुद ही करने चाहिए।

८. छात्रालयका खर्च उतना ही होना चाहिए जितना एक गरीब देशसे चल सके।

९. विद्यार्थियोंको नियमित रूपसे मिष्टान्न मिलना ही चाहिए यह रिवाज अच्छा नहीं है।

१०. छात्रालयको सादगी, मितव्ययिता और संस्कारिताका नमूना होना चाहिए। छात्रालयमें जाकर विद्यार्थी अधिक छैल-छबीला, उड़ाऊ और उच्छृंखल होजाय तो कहना चाहिए कि वह छात्रालय सफल नहीं हो रहा है।

१८

शिक्षाका खर्च

१. शिक्षाका बहुत खर्चीली हो जाना यह बताता है कि शिक्षाकी दिशा गलत है।

२. शिक्षाकी व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि शिक्षक और विद्यार्थी अपने अन्न-वस्त्रका खर्च तो अपनी मजदूरीसे ही निकाल ले सकें। सिर्फ मकान, साधनों आदिके खर्चके लिए ही जनतासे पैसा मांगना पड़े।

३. आज यह नहीं हो सकता, क्योंकि शिक्षक और विद्यार्थी दोनोंको मेहनतकी यथेष्ट शिक्षा नहीं मिली है और न आदत है। पर प्रयत्न इस दिशामें होना चाहिए इसमें शंका नहीं।

४. बच्चोंको जितनी शिक्षा अपने घरमें ही मिल सकती है उसे देनेके लिए पाठशालाको न फंसना चाहिए। अतः मां-बापको संस्कारी बना देनेसे शिक्षाका खर्च घटेगा।

५. जिसे प्राथमिक शिक्षा कहते हैं वह इस तरह अधिकांशमें घरमें ही मिल जानी चाहिए।

१९

उपसंहार

[पूज्य गांधीजीने स्वलिखित 'सत्याग्रहाश्रमका इतिहास' (अप्रकाशित) के शिक्षा-संबंधी प्रकरणमें अपने मतका जिस रूपमें उपसंहार किया है वह, थोड़ा पुनरुक्ति दोष स्वीकार करके भी, यहां दे देना उचित जान पड़ता है।—लेखक]

शिक्षाके विषयमें मेरे विचार इस प्रकार हैं—

प्रथम काल

१. बालक और बालिकाओंको साथ-साथ शिक्षा देनी चाहिए। बाल्यावस्था आठ वर्षतक समझनी चाहिए

२. उनका समय ज्यादातर शारीरिक काममें लगवाना चाहिए और वह काम भी शिक्षककी देख-रेखमें होना चाहिए। शारीरिक काम शिक्षाका एक विभाग समझा जाना चाहिए।

३. प्रत्येक बालक-बालिकाका झुकाव परखकर उसे काम देना चाहिए।

४. हरएक काम लेते समय उसका कारण उन्हें बता देना चाहिए।

५. बच्चा समझने लगे तभीसे उसे साधारण ज्ञान दिया जाना चाहिए। यह ज्ञान अक्षर-ज्ञानके पहले शुरू होना चाहिए।

६. अक्षर-ज्ञानको लेखन(चित्र)-कलाका विभाग मानकर पहले बच्चेको रेखा-गणितकी आकृतियां बनाना सिखाना चाहिए और जब अंगुलियोंपर उसका काबू जम जाय तब उसे अक्षर उरेहना सिखाना चाहिए। अर्थात् उसे पहलेसे ही शुद्ध अक्षर लिखना सिखाना चाहिए।

७. लिखनेके पहले पढ़ना सिखाना चाहिए। यानी वह अक्षरोंको चित्र समझकर उन्हें पहचानना सीखे और फिर चित्र बनाये।

८. इस प्रकार शिक्षकसे जबानी ज्ञान पानेवाले बच्चेको आठ वर्षके अंदर अपनी शक्तिके हिसाबसे बहुत अधिक ज्ञान मिल जाना चाहिए।

९. बच्चेको जबर्दस्ती कुछ भी न सिखाना चाहिए।

१०. जो कुछ वह सीखे उसमें उसे रस आना जरूरी है।

११. बच्चेको शिक्षा खेल जैसी लगनी चाहिए। खेल भी शिक्षाका आवश्यक अंग है।

१२. बच्चोंकी सारी शिक्षा मातृभाषाके द्वारा होनी चाहिए।

१३. बच्चोंको हिंदी-उर्दूका ज्ञान राष्ट्रभाषाके रूपमें दिया जाना चाहिए। उसका आरंभ अक्षर-ज्ञानके पहले होना चाहिए।

१४. धार्मिक शिक्षा आवश्यक समझी जानी चाहिए। वह बच्चेको पुस्तकके द्वारा नहीं बल्कि शिक्षकके आचरण और उसके मुखसे मिलनी चाहिए।

दूसरा काल

१५. नौसे सोलह वर्षतकका दूसरा काल है

१६. दूसरे कालमें भी अंततक बालक-बालिकाओंकी शिक्षा साथ-साथ हो तो अच्छा है।

१७. दूसरे कालमें हिंदू लड़केको संस्कृतकी शिक्षा मिलनी चाहिए, मुसलमानको अरबी की।

१८. इस कालमें भी शारीरिक काम तो चलना ही चाहिए। अक्षर-ज्ञानका समय आवश्यकतानुसार बढ़ा देना चाहिए।

१९. इस कालमें बालकके मां-बापका धंधा यदि निश्चित हो चुका जान पड़े तो उसे उस धंधेका ज्ञान मिलना चाहिए और उसे इस तरह तैयार करना चाहिए जिससे वह पैतृक धंधे द्वारा अपनी रोजी कमाना पसंद करे। यह नियम लड़कीपर लागू नहीं होता।

२०. सोलह वर्षकी उम्रतक बालक-बालिकाको दुनियाके इतिहास, भूगोल और वनस्पतिशास्त्र, खगोल, गणित, भूमिति और बीजगणितका सामान्य ज्ञान होजाना चाहिए।

२१. सोलह वर्षके बालक-बालिकाको सीना, रसोई बनाना सीखना चाहिए।

तीसरा काल

२२. सोलहसे पच्चीस तकका मैं तीसरा काल मानता हूं। इस कालमें प्रत्येक युवक या युवतीको उसकी इच्छा और परिस्थितिके अनुसार शिक्षा मिलनी चाहिए।

२३. नौ बरसके बाद शुरू होनेवाली शिक्षा स्वावलंबी होनी चाहिए। अर्थात् विद्यार्थी शिक्षा पाते हुए ऐसे धंधोंमें लगा हुआ हो जिनकी आम-दनीसे पाठशालाका खर्च निकल आये।

२४. पाठशालामें आमदनी तो शुरूसे ही होनी चाहिए, पर पहले बरसमें वह पूरा खर्च निकलने भर न होगी।

२५. शिक्षकोंकी तनख्वाह मोटी नहीं हो सकती, पर उन्हें पेट भरने भर पैसा मिलना चाहिए। उनमें सेवावृत्ति होनी चाहिए। प्राथमिक शिक्षाके लिए चाहे जैसे शिक्षकसे काम चला लेनेका रिवाज निंद्य है। शिक्षक मात्रको चरित्रवान होना चाहिए।

२६. शिक्षकके लिए बड़े और खर्चीले मकानोंकी जरूरत नहीं है।

२७. अंग्रेजीकी पढ़ाई एक भाषाके रूपमें होनी चाहिए और उसे शिक्षणक्रममें स्थान मिलना चाहिए। हिंदी जैसे राष्ट्रभाषा है वैसे अंग्रेजीका उपयोग परराष्ट्रोंके साथ व्यवहार तथा व्यापार करनेके लिए है।

स्त्री-शिक्षा

२८. स्त्रियोंकी विशेष शिक्षाका रूप क्या हो और वह कबसे आरंभ होनी चाहिए, इस विषयमें यद्यपि मैंने सोचा और लिखा है पर अपने विचारोंको निश्चयात्मक नहीं बना सका। इतनी तो मेरी पक्की राय है कि जितनी सुविधा पुरुषको है उतनी ही स्त्रीको भी मिलनी चाहिए और जहां विशेष सुविधाकी आवश्यकता हो वहां वैसी सुविधा मिलनी चाहिए।

प्रौढ़-शिक्षा

२९. प्रौढ़ वयको पहुंचे हुए ऐसे स्त्री-पुरुषोंके लिए जो निरक्षर हैं वर्ग (क्लास)की जरूरत तो है ही, पर उन्हें अक्षरज्ञान होना ही चाहिए यह मैं नहीं मानता। उनके लिए व्याख्यान आदिके द्वारा सामान्य ज्ञान पानेकी सुविधा होनी चाहिए और जिन्हें अक्षरज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा हो उनके लिए इसकी पूरो सुविधा होनी चाहिए।

खंड १२ :: साहित्य और कला

१

साधारण टीका

१. साहित्य और कलाको सत्य, हितकर और उपयोगीपनकी कसौटी पर पास होना ही चाहिए।

२. सत्यको यहां व्यापक अर्थमें लेना चाहिए। तफसील अथवा घटनाओंकी सत्यताके अर्थमे नहीं किंतु सिद्धांत अथवा आदर्शकी सत्यताके अर्थमें लेना चाहिए। मिसालके तौरपर, हो सकता है कि हरिश्चंद्र या रामकी कथा केवल काल्पनिक हो, पर इस कथासे निकलनेवाले सिद्धांत और आदर्श सत्य, हितकर और उपयोगी हैं, इसलिए इस कथाका साहित्य उक्त कसौटीपर पास हो जाता है।

३. घटनाएं और वर्णन सच्चो और हूबहू तस्वीर पेश करनेवाले हों तो समुचित प्रकारका साहित्य या कला नहीं कहला सकते। बहुत-सी घटनाएं सत्य होनेपर भी अहितकर और निरुपयोगी अथवा हानिकर होती हैं। उन्हें उपस्थित करनेवाला साहित्य और कला हानिकारक ही है—उदाहरणार्थ, वेश्याके घरका शब्दचित्र।

४. अक्सर सत्य, नीति, धर्म इत्यादिकी अंतिम विजय बताते हुए भी उसके पहलेके असत्य, अनीति, अधर्म आदिके चित्र ऐसे बीभत्स रूपमें अंकित किये जाते हैं जिससे लोगोंकी हलकी वृत्तियोंको उत्तेजन मिलता है। ऐसा साहित्य और कला भी गंदी ही मानी जायगी।

२

साहित्यकी शैली

१. कितना ही साहित्य ऐसा होता है जिसे विद्वान् या जिन्हें वह परंपरासे अवगत हुआ है वही लोग समझ सकते हैं, फिर भी वह उत्कृष्ट

होता है यह सत्य है। पर साधारणतः इसे साहित्यका गुण नहीं बल्कि दोष ही समझना चाहिए। विशेष कारण न हो तो साहित्यके उत्कृष्ट होते हुए भी साहित्यकारको जन साधारणके समझनेयोग्य भाषा काममें लानेका प्रयत्न करना चाहिए।

२. इसमें अपवाद हो सकते हैं जिनमेंसे कुछ यहां दिये जाते हैं—

(अ) भाषाके सरल और सुबोध होते हुए भी विषय नया, असाधारण, कठिन और गंभीर विचारयुक्त हो तो वैसा साहित्य जन-साधारण दूसरेकी सहायताके बिना न समझ सकें यह हो सकता है। उदाहरणार्थ गीताकी शैली इतनी सरल है कि साधारण संस्कृत पढ़ा मनुष्य भाषाकी दृष्टिसे उसे समझ सकता है, फिर भी साधारण मनुष्य संस्कृत जानते हुए भी उसका तात्पर्य ग्रहण नहीं कर सकता और उसे विद्वानोंकी टीकाओंका आश्रय लेना पड़ता है; कारण यह कि उसका विषय कठिन और विचार गहन हैं और केवल भाषाज्ञानके बलपर नहीं समझे जा सकते।

(आ) इसी तरह शास्त्रीय ग्रंथ भी जिनमें विशेष पारिभाषिक शब्दोंका व्यवहार होता है जैसे—तर्कशास्त्र, कानून या वैद्यकके ग्रथ आम लोग न समझ सकें तो यह उन ग्रंथोंका दोष नहीं माना जायगा।

(इ) मनोरंजनके लिए रचित पहेलियों, समस्याओं, कबीर-जैसोंके गूढ़ काव्यों, 'उलटी बानियों' वगैरहका अर्थ बहुत करके परंपरासे ही जाना जा सकता है। ऐसा साहित्य थोडा, ज्ञानदायक और निर्दोष हो तो उसका कोई विरोध न करेगा।

(ई) पहले दो प्रकारके अपवादोंमें बताये गये साहित्यमेंसे जन-साधारणके लिए जितना आवश्यक और उपयोगी हो उतना सरल भाषामें प्रस्तुत कर देना भी जिन लोगोंने उन विषयोंमें प्रवीणता प्राप्त की है उनका एक फर्ज है।

३

अनुवाद

१. दूसरी भाषाके उत्कृष्ट साहित्यका परिचय अपनी भाषा बोलनेवालोंको करा देना भी साहित्यका एक उपयोगी अंग है।

२. अच्छे अनुवादमें नीचे लिखे गुण होने चाहिए—

(अ) वह इतना सहज और सरल होना चाहिए मानो स्वभाषामें ही सोचा और लिखा गया हो। ऐसा नहीं कि जिस भाषासे अनुवाद किया गया हो उस भाषाके रूढ़ि-प्रयोगों और शब्दोंके विशेष अर्थ न जाननेवाले उसे समझ ही न सकें।

(आ) ऐसे रूढ़ि-प्रयोग या मुहावरे अनुवादमें देने ही पड़ें, अथवा मूल शब्दका भाव स्पष्ट करनेके लिए शब्द गढ़ने पड़ें या ऐसे दृष्टांतों, रूपकों या दंत-कथाओंका उल्लेख करना पड़े जिनसे अपनी भाषा बोलनेवाले लोग अपरिचित हैं तो उन्हें समझानेके लिए टिप्पणी लगा देनी चाहिए।

(इ) वह कृति ऐसी मालूम होनी चाहिए मानो अनुवादकने मूल पुस्तकको हजम करके फिरसे स्वभाषामें उसे रचा हो।

(ई) मूल पुस्तक जिन खूबियोंके कारण प्रसिद्ध हुई और उत्कृष्ट मानी गयी हो वे गुण यदि अनुवादमें न आयें तो वह अनुवाद निम्न कोटिका ही माना जायगा।

(उ) साधारणतः वह इतना प्रामाणिक होना चाहिए कि मूल पुस्तकके बदले उसका प्रमाण दिया जा सके।

३. इस कारण स्वतंत्र पुस्तक लिखनेकी अपेक्षा अनुवादका काम सदा सरल नहीं होता। मूल लेखकके साथ जो पूरा-पूरा समभावी और एकरस नहीं हो सकता और जो उसके मनोगतको पकड़ न पाये उसे उसका अनुवाद नहीं करना चाहिए।

४. अनुवाद करनेमें भिन्न-भिन्न प्रकारका विवेक करना होता है। कुछ पुस्तकोंका अक्षरशः अनुवाद करना आवश्यक माना जा सकता है;

कुछका सार मात्र दे देना काफी समझा जायगा; कुछका भाषांतर उन्हें ऐसा जामा पहनाकर करना चाहिए जिससे अपने समाजकी समझमें आ जायं, कितनी ही पुस्तकें ऐसी होती हैं कि अपनी भाषामें उत्कृष्ट मानी जानेपर भी हमारा समाज अतिशय विभिन्न होनेके कारण हमारी भाषामें उनके अनुवादकी आवश्यकता नहीं होती। कुछ पुस्तकोंका अक्षरशः उलथा होनेके बाद साररूप अनुवाद भी आवश्यक माना जा सकता है।

४

वर्ण-विन्यास

१. हिंदुस्तानीमें* वर्ण-विन्यास (हिज्जे) के विषयमें कुछ अराजकता-सी मच रही है। यह ठीक नहीं है।

२. भाषाकी वृद्धिके साथ-साथ व्याकरण और वर्ण-विन्यासके नियमोंमें थोड़ा-बहुत फेर-फार होता रहे, यह बात समझमें आ सकती है; फिर भी साधारण व्यवहारके शब्दों और उनके रूपोंका व्याकरण तथा वर्ण-विन्यासके नियम निश्चित हो जाने चाहिए।

३. कुछ इने-गिने शब्दोंके वर्ण-विन्यासके बारेमें हरएक भाषामें विद्वानोंमें कुछ मतभेद हो सकता है। लेकिन साधारण शब्दोंके बारेमें विद्वानोंको उचित है कि वे जनताको एक ही प्रकारका वर्ण-विन्यास स्वीकार करनेकी सलाह दें।

४. वैसी सलाह देते समय प्रचलित रूढ़ि, लिखने तथा छापनेका सुभीता, उच्चारणके नियम तथा व्युत्पत्ति—इन सभी बातोंपर यथायोग्य ध्यान देना चाहिए, और कहीं एकको तो दूसरी जगह दूसरीको महत्त्व

*** गांधीजीने यह बात गुजरातीके विषयमें कही है, पर वह हिंदी-हिंदुस्तानीपर भी पूरे तौरसे घटित होती है। —अनुवादक**

देनेकी आवश्यकता समझनी चाहिए। इस विषयमें यह दृष्टि रखनी चाहिए कि साधारण जनता हिज्जेके बारेमें उल्झनमें न पड़े।

५

अखबार

१. अखबार, मासिक-पत्र आदि भी साहित्य-कार्यके अंग हैं, जन-साधारणको शिक्षित बनानेके एक जबर्दस्त साधन हैं।

२. पर इस साधनका अतिशय दुरुपयोग किया गया है। लोगोंको सच्ची खबरें और अच्छी सलाह देनेके बदले जान-बूझकर झूठी, आधी सच्ची आधी झूठी या अधूरी खबर देकर अथवा सच्ची खबरको गलत दृष्टि-बिंदुसे प्रस्तुत करके उन्हें गलत रास्तेपर लेजानेका काम समाचार-पत्रों द्वारा बाकायदा किया जा रहा है।

३. विज्ञापनों द्वारा द्रव्य प्राप्त करनेके लोभमें ये अनेक प्रकारकी झूठ और अनीति फैलानेका साधन बन रहे हैं।

४. जिस व्यक्तिको पढ़नेका शौक हो और फुर्सत भी हो पर गप्पे मारकर जल्दी वक्त गुजारनेके लिए कोई संगी-साथी न हो और इससे उसका जी ऊब रहा हो उसे ऊबने देनेमें कोई हर्ज नहीं। कुछ देर ऊबते रहनेके बाद फिर वह कोई काम खोजकर उसमें लग जायगा। पर केवल फुर्सतका वक्त काटनेके लिए ही निकला हुआ पत्र, मासिक या किस्से-कहानीकी किताब लेकर बैठेगा तो उससे मनोरंजनका तो आभासमात्र होगा, अधिक समय परोक्ष रीतिसे गप्पें हांकने यानी आलसमें ही बीतेगा और अधिकतर वह अपने मनको हीन भावनाओंसे चलायमान कर लेगा एवं कुसंस्कारोंको पोसेगा। पत्रों, मासिकों और उपन्यासोंसे अनेक युवक-युवतियां विकारकी अवस्थामें पड़े और कुमार्गमें प्रवृत्त हुए पाये गये हैं। ऐसे प्रकाशन जला देने योग्य ही माने जाने चाहिए।

५. पत्र या लेखनके व्यवसायमें सिर्फ उसी मनुष्यको पड़ना चाहिए जिसे यह निश्चय होगया हो कि उसे अपना अथवा दूसरे किसीसे प्राप्त

कोई सच्चा हितकर और उपयोगी संदेश देना है। उसे सत्यपर दृढ़तासे आरूढ़ रहना चाहिए और अपने खिलाफ जानेवाली सच्ची बातों और शिकायतोंको भी प्रकाशित करना चाहिए तथा अपनी भूलोंको शुद्ध भावसे स्वीकार करना चाहिए। विज्ञापनोंसे अपना खर्च निकालनेके लोभमें नहीं पड़ना चाहिए, बल्कि अपनी उपयोगिता सिद्ध करके ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए कि लोकप्रियताके बलपर ही उसका खर्च निकल सके। इसके लिए उसे केवल मुट्ठीभर लोगोंकी ही आवश्यकताओंको नहीं बल्कि समस्त जनता अथवा आम लोगोंकी आवश्यकताओं और विषयोंकी चर्चा करनेवाला होना चाहिए।

६

कला

१. प्रकृतिके सौंदर्यके सामने मानव-निर्मित सब कलाओंका सौंदर्य तुच्छ है। आकाश और पृथ्वीका सौंदर्य कला-रसिकको आनंद देनेके लिए काफी है। उस कलाका स्वाद जो नहीं ले सकता वह यदि मनुष्य-निर्मित कलाका शौकीन समझा जाता हो तो वह मोहक दृश्योंको ही कला समझने वाला होगा। सच्ची कलाका उसे भान ही नहीं है।

२. सच्ची कला अच्छे साहित्यकी भांति विचारोंको उपस्थित करनेका साधन है, और साहित्यकी शैलीके संबंधमें जो विचार प्रकट किये गये हैं वे यथोचित रूपसे कलापर भी घटित होते हैं।

३. कलाका संबंध नीति, हितकरता और उपयोगितासे नहीं है, केवल सौंदर्यसे ही है—यह कहना सौंदर्य और कलाको न समझनेके जैसा है। सत्य ही ऊंची-से-ऊंची कला और श्रेष्ठ सौंदर्य है और वह नीति, हितकरता तथा उपयोगितासे रहित नहीं हो सकता।

४. अतः कलाका स्थान मनुष्य-जीवनके लिए उपयोगी साधन-सामग्रियोंमें होना चाहिए; और कलाके कारण वे पदार्थ सुंदर लगनेके अतिरिक्त अधिक अच्छी तरह काम देनेवाले भी होने चाहिए।

५. जिस कलाके पीछे प्राणियोंपर जुल्म, उनकी हिंसा, उत्पीड़न आदि हों उसमें बाह्य सौंदर्य कितना ही हो तो भी वह कला कलि अथवा शैतानका ही दूसरा नाम है।

६. जो कला मनुष्यकी हीन वृत्तियोंको उभारती और भोगोंकी इच्छाको बढ़ाती है वह कला गंदे साहित्यकी श्रेणीमें ही समझी जायगी।

खंड १३ :: लोकसेवक

१

लोकसेवकके लक्षण—सामान्य

१. लोकसेवक वह माना जायगा जिसने निर्वाहके लिए कोई धंधा करना ही चाहिए इस खयालसे जनताकी सेवाका काम न उठाया हो बल्कि जनताकी सेवा करना ही जिसके मनकी मुख्य अभिलाषा हो।

२. अपना सारा समय जन-सेवामें देते रहनेके कारण वह अपना निर्वाह उस कामके लिए स्थापित संस्थासे ही कुछ लेकर करे तो इसमें कोई दोष नहीं है। और ठीक तौरसे काम होनेके लिए ऐसे लोकसेवकों की आवश्यकता रहती ही है।

३. पर लोकसेवकके निर्वाहकी नीति दूसरे सेवकोंकी अपेक्षा भिन्न होनी चाहिए। वह अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनेकी लालसासे इस काममें नहीं पड़ा है इसलिए वह अपने वेतनमें वृद्धिकी आशा न रक्खे और अपनेपर दूसरोंके निर्वाहकी जिम्मेदारी न बढ़े इसका भी यथासंभव खयाल रक्खे। इसके सिवा उससे कुछ प्रत्यक्ष अथवा भावी आशाओंके त्यागकी अपेक्षा भी रक्खी जा सकती है। कुछ बचा रखनेकी नीयतसे वह अपना वेतन तय न करे बल्कि यह विश्वास रक्खे कि अड़चनके समय ईश्वर उसे देगा ही।

४. मैंने कुछ त्याग किया है अथवा जनताका सेवक या आजीवन-सेवक बन गया हूं, इस बातका जिसे भान या अभिमान रहा करता है वह लोकसेवक होते हुए भी क्षुद्रताका परिचय देता है।

५. लोकसेवक नम्रताको पराकाष्ठा कर दे—'शून्य' बनकर रहे। वह दूसरे वेतनभोगी सेवकों अथवा दूसरे व्यवसायोंके उपरांत सेवाका काम करनेवाले लोगोंसे अपनेको श्रेष्ठ न माने और उनसे बड़ा दर्जा पाने का प्रयत्न न करे।

६. लोकसेवकको अपनी किसी स्वार्थमय—जैसे यश, अधिकार इत्यादि की—महेच्छाकी पूर्तिके लिए जन-सेवाके कार्यमें नहीं पड़ना चाहिए, बल्कि धर्मकी भाषामें कहें तो लोकसेवा द्वारा ईश्वरोपासना होगी इस श्रद्धासे, अथवा व्यवहारकी परिभाषामें कहें तो अपने देश-बंधुओंको कुछ अधिक सुखके मार्गमें बढ़ानेमें निमित्त बननेकी इच्छासे पड़ना चाहिए।

७. अतः जनताका सेवक अपनी मधुरता और नम्रतासे जनता और अपने साथियोंका मन हरण कर ले, अपने कार्य-प्रदेशमें जो कुछ सफलता मिले उसका यश अपने साथियोंको दे एवं खुद की हुई सेवाके बलसे ही उनका प्रेमपात्र बने।

८. निःस्वार्थ, नम्र, सच्चा और चारित्र्यवान लोकसेवक लोकप्रिय न हो गया हो ऐसा नहीं देखा गया है। उलटा यह अनुभव है कि जिसपर विश्वास जम गया हो वह लोकसेवक अपने कार्य-प्रदेशमें लगभग सर्वाधिकारी बन जाता है और जनता उसकी बात मुंहसे निकली नहीं कि मान लेती है। वह किसीकी अप्रीति या ईर्ष्याका पात्र नहीं होता, न किसीको कष्ट देनेवाला मालूम होता है।

९. जनता या दूसरे साथी अथवा नेता या स्वयंसेवक-मंडलसे बाहरके कार्यकर्त्ता कृतघ्न हैं अथवा कार्यमें विघ्नरूप हैं—जिस सेवक-को बार-बार ऐसा प्रतीत होता हो खुद उसमें ही कोई भारी दोष है यह बात वह पक्की माने; क्योंकि ऐसा अनुभव है कि जनता साधा-रणतः कृतज्ञ ही नहीं बल्कि बड़ी उदारतासे लोकसेवकको कद्र करने-वाली होती है।

१०. जन-सेवकमें नीचे-लिखे गुण होने चाहिए—

(अ) वह धार्मिक वृत्तिवाला होना चाहिए। अर्थात् उसे सत्याग्रह, सत्कर्म, सद्वाणी और सद्वर्तनमें पूर्ण निष्ठा होनी चाहिए। इसके लिए उसमें लगन, भूल होनेकी अवस्थामें पश्चात्ताप और इसीमें अपना और जनताका श्रेय है यह दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए।

(आ) उसका चरित्र इतना विशुद्ध होना चाहिए कि स्त्रियां उसके

पास निर्भय होकर जा सकें और लोगोंको उसे स्त्रियोंके पास जाने देनेमें संकोच न मालूम हो।

(इ) उसका आर्थिक व्यवहार सर्वथा शुद्ध होना चाहिए। कितने ही लोग बड़ी रकमोंमें तो ईमानदार होते हैं, पर 'दमड़ी-छदामके चोर' होते हैं। कितने पाईका हिसाब तो सही-सही देते हैं और बड़ी रकमोंमें गोलमाल करनेवाले होते हैं। लोकसेवकको इन दोनों आक्षेपोंसे परे होना चाहिए और अपनी मार्फत आयी हुई पाई-पाईका उसे ठीक-ठीक हिसाब रखना चाहिए।

(ई) उसे सतत उद्योगी होना चाहिए। जो गप-शप, फालतू बातों, निंदा-स्तुतिमें अपना समय बिताता है वह सेवक कभी प्रतिष्ठा नहीं पा सकता। उसकी उद्योग-शीलता ऐसी होनी चाहिए कि लोगोंपर उसकी छाप बैठ सके।

(उ) समय-पालनकी आदत उसे अवश्य होनी चाहिए। जिस कार्यके लिए जो समय तय किया हो उसमें चूक न होनी चाहिए।

(ऊ) इसका अर्थ यह हुआ कि उसे सदैव नियमोंका ठीक तौरसे पालन करते रहना चाहिए। सुबहसे राततककी उसकी क्रिया घड़ीकी सुईकी भांति यथाक्रम चलती होनी चाहिए।

(ए) इसके सिवा अपनी संस्थाके सिद्धांतों और नियमोंका पालन उसे लगनके साथ करना और अपने प्रधानकी आज्ञाका ठीक-ठीक पालन करनेवाला होना चाहिए। जो आज्ञा-पालन करना नहीं जानता वह आज्ञा-पालन करानेकी योग्यता कभी प्राप्त नहीं कर सकता।

(ऐ) लोकसेवकको अपने देह-गेहकी चिंता ईश्वरको सौंपकर निर्भयता प्राप्त करनी चाहिए। लोक-सेवाके लिए अपने धन, प्राण, कुटंब, सुख-सुविधा, स्वतंत्रता इत्यादिका त्याग करनेकी पहली जिम्मेदारी उसे अपने सिर ले लेनी चाहिए। और जब जरूरत आ पड़े तब जोखिम उठाकर भी जनताके कार्यमें पड़ना चाहिए।

(ओ) लोकसेवकको खुद तो बहुत ही साफ-सुथरा रहना चाहिए; फिर भी अस्वच्छ लोगोंसे मिलने-जुलने और अस्वच्छता हटानेके काम करनेमें उसे घिन नहीं लगनी चाहिए।

(औ) उसे अपना रोजनामचा (डायरी) लिखनेकी आदत रखनी चाहिए और उसमें अपने दैनिक कर्मोंका यथावत् उल्लेख करना चाहिए।

(अं) ईश्वर-स्मरणसे दिनका आरंभ करके, रातको सारे दिनके कार्यका सिंहावलोकन तथा उसपर मनन करके और ईश्वर-स्मरणपूर्वक नींदकी गोदमें जानेवाला लोक-सेवक लोक-सेवा करते-करते श्रेयको ही प्राप्त होगा।

(अः) ऐसा सेवक विचार करके इस नतीजेपर पहुंचेगा कि उसे ब्रह्मचर्य धारण करके रहना चाहिए; और जबसे उसे इस बातका निश्चय हो जाय तबसे उसे इस दिशामें प्रयत्नशील होजाना चाहिए।

२

ग्रामसेवकके कर्त्तव्य

१. ग्रामसेवकका पहला धर्म ग्राम निवासियोंको सफाईकी शिक्षा देना है। इस शिक्षणमें व्याख्यान और पत्रिकाओंकी बहुत कम आवश्यकता है—अर्थात् यह पदार्थ-पाठके द्वारा ही दी जा सकती है। ऐसा करते हुए भी धीरजकी आवश्यकता तो रहेगी ही। ग्रामसेवकके दो दिन सेवा करनेसे लोग अपने-आप काम करने लग जायेंगे, यह नहीं मान लेना चाहिए।

२. ग्रामसेवक ग्रामवासियोंको एकत्र करके पहले उन्हें उनका धर्म समझाये। फिर गांवसे ही कुदाली, फावड़ा, टोकरी या डोल और झाड़ू—इतनी चीजें जुटाकर सफाईका काम शुरू करदे।

३. रास्तोंकी जांच करके पहले मलको टोकरीमें फावड़ेसे इकट्ठा करले और उस जगहको धूलसे ढक दे। जहां पेशाब हो वहां भी फावड़ेसे ऊपरकी गीली धूल उठाकर उसी टोकरीमें डालले और उसपर आस-पाससे साफ धूल लेकर बखेर दे।

४. मैला किसानके लिए सोना है। उसे खेतमें डालनेसे उसकी बढ़िया खाद बनती है और फसल बहुत अच्छी होती है। अतः किसानको समझाकर यथासंभव किसीके खेतमें मैलेको करीब ९ इंच गहरा गाड़ दे;

इससे अधिक गहरा नहीं गाड़ना चाहिए। मैला गाड़कर गड्ढेको मिट्टी से भर देना चाहिए।

५. मैलेकी व्यवस्थाके बाद कूड़ेकी व्यवस्था करनी चाहिए। कूड़ा दो तरहका होता है—(१) खादके लायक, जैसे गोबर, मूत्र, साग-तरकारीके छिलके, जूठन, आदि; (२) लकड़ी, पत्थर, टीन, चिथड़े इत्यादि।

६. खादके योग्य कूड़ा अलहदा एकत्र करके मैलेकी तरह पर अलग गड्ढेमें गाड़ना चाहिए या घूरकी जगह डालना चाहिए।

७. दूसरा कूड़ा उन गड्ढोंमें डालना चाहिए जिन्हें भरना हो और गड्ढा भर जानेपर मिट्टी बिछाकर गड्ढेको चौरस कर देना चाहिए। ऐसे कूड़ेमेंसे लकड़ीके छिलके, दातनके चीरे आदि धो और सुखाकर ईंधनके काममें ला सकते हैं।

८. धूरके पास सस्ते पाखाने बनानेका जिक्र पहले (आरोग्य-खंडमें) किया जा चुका है। जहां ऐसी व्यवस्था हो वहां किसान जबतक इस प्रकार इकट्ठे हुए मलको हिस्सेके मुताबिक बांट लेना न सीख लें तबतक ग्रामसेवकको रास्तेकी तरह ही घूरको भी साफ करना चाहिए।

९. गांवके रास्तोंको पक्का और अच्छा बनानेके उपाय करना ग्रामसेवकका काम है। स्थानिक परिस्थितिके अनुसार ये उपाय भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। गांवके बड़े-बूढ़े कभी-कभी इसमें सलाह दे सकते हैं।

१०. सफाईसे फुरसत पानेके बाद ग्रामसेवकको आवश्यक औजार और साधन लेकर गांवमें चलनेवाले चरखे, धनुष, ओटनी आदिकी जांच के लिए निकलना चाहिए। जहां दुरुस्तीकी जरूरत जान पड़े वहां कर दे और करना सिखादे। नवसिखियोंके कामकी जांच करके उन्हें उचित सूचनाएं दें। नये उम्मीदवारोंको अलहदा समय देकर उन्हें शिक्षा दे। इसके लिए गांवमें जिस वक्त साधारणतः ये काम चलते हों उसी समय जांचके लिए निकलना चाहिए।

११. कताई, बुनाई या दूसरे धंधोंकी व्यवस्था ग्रामसेवकके द्वारा होती हो तो उसके लिए समय निश्चित करके लोगोंको उसी समय आने

की आदत डलवानी चाहिए और उस बीच मालकी जांच करके उसमें जो सुधार आवश्यक हों वे सुझाने चाहिए।

१२. ग्रामसेवक कम-से-कम दिनमें एक बार ऐसे समय जो ग्रामवासियोंके अनुकूल हो उन्हें एकत्र करके सामूहिक प्रार्थना करे। वह लोगोंकी समझमें आनेयोग्य भाषामें होनी चाहिए। ग्रामसेवकको संगीतका ठीक ज्ञान होना वांछनीय है। यदि उसे गाना न आता हो तो गांवके अच्छा गा सकनेवालों से भजन, धुन वगैरा गवाये और दूसरोंको उसमें शामिल करे। अधिकांश गांवोंमें भजन-मंडलियां होती हैं, उन्हें नये और अच्छे भजन सिखाकर प्रार्थनामें उनका उपयोग करना चाहिए।

१३. प्रार्थनाके बाद लोगोंको अखबारोंसे उपयोगी बातें, अच्छे लेख पुस्तकें, धार्मिक ग्रंथ या कथाएं कह या पढ़कर सुनानी चाहिए।

१४. ग्रामसेवक नीचे-लिखी सूचनाओंको ध्यानमें रक्खे --

(अ) गांवमें दलबंदी हो तो वह खुद किसी दलमें न मिले, किंतु तटस्थ रहकर सबकी एकसी सेवा करे और सबसे समान मित्राचार रक्खे तथा अपने प्रभावसे कुछ हो सकता हो तो उस दलबंदीको मिटानेका प्रयत्न करे।

(आ) साधारणतः जहां मिठाइयां वगैरा खिलायी जानेवाली हों ग्रामसेवक वहांका आमंत्रण स्वीकार न करे। ग्रामवासी ग्रामसेवकोंके प्रति अपनी ममता दिखानेके लिए भिन्न-भिन्न निमित्तोंके बहाने उन्हें निमंत्रण दिया करते हैं और ग्रामसेवक उनका मन न दुखनेके खयालसे उन्हें स्वीकार करने लगता है। पर इससे बहुतेरे ग्रामसेवक स्वाद-लोलुप हो जाते हैं और ऐसे घरों तथा अवसरोंकी खोजमें रहते हैं और मिष्टान्नके न्यौते मांगनेमें भी नहीं हिचकते। ग्रामसेवकको याद रखना चाहिए कि ऐसे खर्च खुशहाल समझे जानेवाले ग्रामवासी भी अपने सामर्थ्यके बाहर ही करते हैं और मेहमानका खर्च ग्रामवासियोंपर इतना अधिक होता है कि मेहमानोंको सादा खाना खिलानेका रिवाज डालना सिखाना जरूरी है। इस कारण ग्रामसेवकको चाहिए कि मिष्टान्नके निमंत्रणोंको न स्वीकार करे और कहीं करना ही पड़े तो साधारणतः मिठाई खानेवाला

होते हुए भी वहां उसे सादा भोजन ही स्वीकार करनेका आग्रह रखकर मिष्टान्नका त्याग करना चाहिए।

(इ) ग्रामसेवकको अपने खाने-पीनेकी आदतें बहुत ही सादी रखनी चाहिए जिससे गरीब-से-गरीब घरको भी उसकी सुविधाके लिए दौड़-धूप या खास तैयारी न करनी पड़े।

(ई) ग्रामसेवकको संयमी और तप-व्रत-मय जीवन बिताना चाहिए। पर जिसे ग्रामसेवा करनी हो उसे अपने व्रत देहातकी हालतका खयाल करके लेने चाहिए, अन्यथा व्रत भी स्वच्छंदता बन जायंगे और ग्रामवासियोंके लिए परेशानी पैदा करनेवाले हो जायंगे। उदाहरणार्थ, कोई ग्राम-सेवक शक्कर छोड़े और दूधमें शहद मांगे, चाय छोड़े और कहवा या मसालेका काढ़ा चाहे तो ये व्रत पूर्वोक्त दोषोंके पात्र हो जायंगे।

खण्ड १४ :: संस्थाएं

१

संस्थाकी सफलता

१. किसी भी संस्थाकी सफलता नीचे लिखी शर्तोंपर अवलंबित रहती है—

(अ) संस्थाके उद्देश्यके प्रति अत्यंत वफादारी-भरी निष्ठा और उसकी सिद्धिके लिए उत्साह होना।

(आ) संस्थाके नियमोंका स्थूल पालन ही नहीं बल्कि उसके भावका पालन होना।

(इ) संस्थाके संचालक, सभ्य, सेवक आदि कार्यकर्त्ताओंमें भ्रातृभाव और एकमत्य होना।

२. इन तीनमेंसे एक शर्त भी न पाली जाती हो तो दूसरी अनुकूलताओंके रहते भी वह संस्था सप्राण नहीं बनती।

२

संस्थाका संचालक

१. संस्थाका संचालक ही संस्थाका प्राण कहा जा सकता है।

२. उद्देश्यके प्रति उसकी निष्ठा और उत्साह, उसका नियम-पालन, दूसरे सभ्योंके प्रति उसका व्यवहार, उसकी उद्योगशीलता—इन सबपर संस्थाकी सफलता बहुत-कुछ अवलंबित रहती है।

३. संचालकको अपने अधिकारका गर्व अथवा संस्थाके दूसरे सभ्योंके प्रति अनादर या अरुचि रहती हो तो वह संस्थाको धक्का पहुंचायेगी।

४. जैसे अच्छा सेनापति नियम-पालन करानेमें बहुत आग्रही और सख्त होनेपर भी अपने सिपाहियोंका प्रेम-संपादन करनेकी चिंता और

उनका अभिमान रखता है वैसे ही संस्थाके संचालकको भी होना चाहिए।

५. संचालककी निगाह संस्थाकी छोटी-से-छोटी बातोंपर भी रहनी चाहिए। उस संस्थामें रहनेवाले मनुष्यों तथा प्राणियोंके सुख-दुःखकी वैसी ही चिंता रखनी चाहिए जैसे माता बच्चेकी रखती है।

६. संचालक मौका आनेपर अपने अधिकारका उपयोग करे, फिर भी अपने मनमें अपने मातहत लोगोंके साथ समानता अथवा साथी-पनका ही संबंध माने; और छोटे-से-छोटे आदमीको भी अपना मित्र ही समझे। वह यह माने कि मेरा संचालकपन मेरी विशेष योग्यताके कारण नहीं है बल्कि मेरे प्रति मेरे साथियोंके पक्षपात या आदरके कारण ही है।

७. इससे वह छोटे-से-छोटे व्यक्तिकी सूचनाको भी आदरपूर्वक सुनेगा और उचित होनेपर उसे स्वीकार करनेको तैयार रहेगा, तथा अनुचित लगनेपर उसका अनौचित्य समझानेका प्रयत्न करेगा।

८. संचालकको कानका कच्चा न होना चाहिए। वह किसीके विषय-में जल्दी प्रतिकूल मत न बनाये, बल्कि प्रतिकूल राय कायम करनेमें दीर्घ-सूत्रता दिखाये और स्पष्ट प्रमाणके बिना वैसी राय न बनाये।

९. संचालक अपने अधीन काम करनेवालोंमेंसे किसीपर विशेष प्रेम न दिखाये, किसीके साथ पक्षपात न करे और एकको हीन ठहराने के लिए दूसरेका बखान न करे।

१०. नियमोंका ठीक-ठीक पालन करानेके लिए व्यवहार या वाणी में कठोरता लाने या सजा देनेकी जरूरत नहीं। ऐसी जरूरत समझने-वाले संचालक अपनेमें योग्यताकी कमी होनेका सबूत देते हैं।

३

संस्थाके सभ्य

१. जिस संस्थाके सभ्योंमें परस्पर भ्रातृभाव और आदर नहीं है वह संस्था अधिक समयतक तेजस्वी नहीं रह सकती। उसमें शाखाएं और

दलबंदियां हो जायंगी, और उसके सदस्य संस्थाके मूल उद्देश्यको भूलकर एक-दूसरेके साथ लड़ने-झगड़नेमें ही लग जायंगे ।

२. जिस संस्थाके सभ्य अपनेसे ऊपरवालोंकी आज्ञाका पालन करनेके लिए सहर्ष तत्पर न रहते हों वह अधिक समयतक तेजस्वी नहीं रह सकती । उसमें आलस्य और ढीलापन आजायगा, और सभ्य प्रमादमें पड़ जायंगे ।

३. संचालक और सभ्योंमें केवल स्थूल ही नहीं बल्कि मानसिक सहयोग भी होना चाहिए । अर्थात् सभ्योंके लिए संचालककी इच्छा या आज्ञाके अधीन होना ही काफी नहीं है, बल्कि उस इच्छा या आज्ञाका औचित्य वे मानते हों तो इस तरह व्यवहार करना चाहिए मानो खुद ही उन्होंने अपने मनसे वह काम करनेका निश्चय किया हो ।

४. जिस नियम या आज्ञाके औचित्यके विषयमें सभ्योंको इतमीनान न हो उसके बारेमें उन्हें संचालकके साथ स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए और जबतक समाधान न हो जाय तबतक संचालकके मनमें ऐसा भास न उत्पन्न होने देना चाहिए कि समाधान होगया ।

५. ऐसा नियम या आज्ञा अगर सत्य या धर्मके विपरीत न मालूम होती हो किंतु व्यावहारिक दृष्टिसे ही अनुचित लगती हो तो उसके औचित्यके बारेमें समाधान न होने पर भी उसका पालन करना चाहिए; और यदि वह सत्य और धर्मके विरुद्ध मालूम हो तो संस्था छोड़नेतकके लिए तैयार रहना चाहिए ।

६. वह नियम या आज्ञा सत्य या धर्मके विरुद्ध न हो पर अपनी कमजोरीके कारण उसका पालन कठिन जान पड़ता हो तो संस्थाकी भलाईके लिए सभ्यका उसे छोड़ देना ही इष्ट माना जायगा ।

७. सभ्योंमें परस्पर मतभेद हो जाय, किसीके आचरणके विषयमें शंका हो या उससे अपनेको असंतोष हुआ या दुःख पहुंचा हो, किसीकी नीयतके बारेमें अपने मनमें बदगुमानी हुई हो, तो वैसे हरएक मामलेमें सबसे पहले उस आदमीसे ही बातचीत करके सफाई कर लेनी चाहिए । अगर इससे सफाई न हो और उसके बारेमें हमारी राय

कायम रहे या अधिक दृढ़ हो जाय तो उसकी सूचना उसके या अपने तात्कालिक अफसरको दे देनी चाहिए और मुनासिब कार्रवाई करनेका भार उसे सौंप देना चाहिए।

८. उस व्यक्तिके साथ स्पष्टीकरण करनेका प्रयत्न किये बिना उसके संबंधमें ऊपरके अधिकारी या किसी दूसरेसे जिक्र करना, अथवा अधिकारीको जताये बिना सर्वोच्च अधिकारीतक बात पहुंचा देना अनुचित है।

९. अपने मनमें किसीके बारेमें इस प्रकार कोई बुराई आ गयी हो तो तुरंत उसकी सफाई करानेके बदले उसे मनमें रखे रहना, और ऊपरके अधिकारीको जतानेकी आवश्यकता उपस्थित होनेपर भी उसे न जताना संस्थामें गंदगी इकट्ठी होने देना है।

१०. जिस संस्थामें सभ्योंके दोषोंकी अंदर-ही-अंदर कानाफूंसी चलती रहती हो फिर भी अफसरोंतक उसकी बात न पहुंचती हो और जिसके संबंधमें बातें होती हों उसके साथ स्पष्टीकरण भी न किया जाता हो वह संस्था तेजस्वी नहीं रह सकती। उसमें पाप, दंभ, असत्य और झूठी लज्जा प्रवेश करके उसको निष्प्राण बना डालेंगे।

४

संस्थाका आर्थिक व्यवहार

१. धनके अभावमें कोई सच्चा काम अटक जानेकी बात हमें नही मालूम।

२. पूंजी इकट्ठी करके उसके ब्याजसे खर्च चलानेकी प्रवृत्ति इष्ट नहीं है। संस्थाके संचालकोंमें यह दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए कि जिस संस्थाका जनताके लिए उपयोग है उसके निर्वाहके लिए पैसा मिलकर ही रहेगा।

३. यह सही है कि जबतक उस संस्थाकी उपयोगिताके विषयमें लोगोंको विश्वास न हो जाय तबतक संचालकोंको अधिक मेहनत करनी

पड़ेगी, पर वह मेहनत उनकी तपश्चर्या और सेवाका ही भाग मानी जानी चाहिए।

४. इसके बाद तो इतनी मदद मिलती रहती है कि अनेक संस्थाओं की निष्प्राणताका कारण उनके पास होनेवाला अर्थसंचय ही हो जाता है। इस कारण आदर्श संस्थाको धन एकत्र कर रखनेके फेरमें नहीं पड़ना चाहिए।

५. आम तौरसे देखा जाता है कि सार्वजनिक पैसेसे चलनेवाली संस्थाओंमें कमखर्चीकी ओर काफी ध्यान नहीं दिया जाता। यह बड़ा दोष है। हिंदुस्तान-जैसे गरीब देशकी सेवा करनेवाली संस्थाओंको बहुत ही किफायतसे चलना चाहिए।

६. संस्थाका हिसाब-किताब ठीक और साफ रखनेपर खास तौरसे ध्यान देना चाहिए। पाई-पाईका हिसाब महाजनी-पद्धतिसे रखना चाहिए और प्रमाणभूत हिसाब-परीक्षकोंसे उसकी जांच कराते रहना चाहिए।